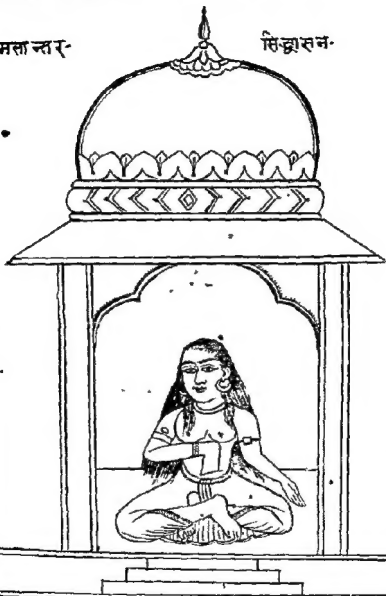


मत्तान्तर-

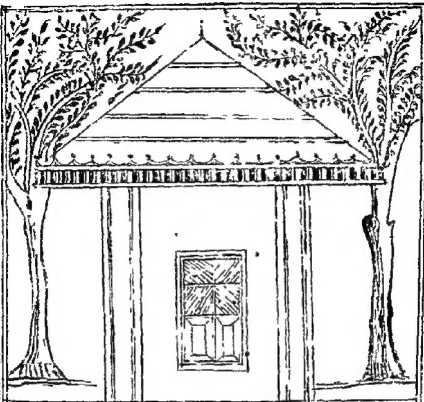
सिद्धासन-



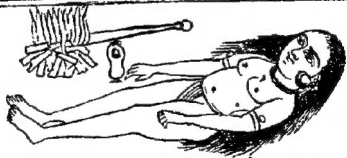
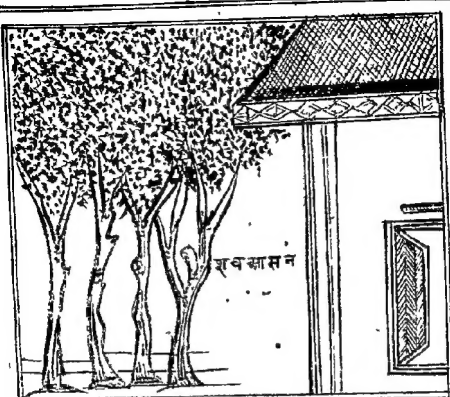


मधुसूदन.





पश्चिम नतां नशासन

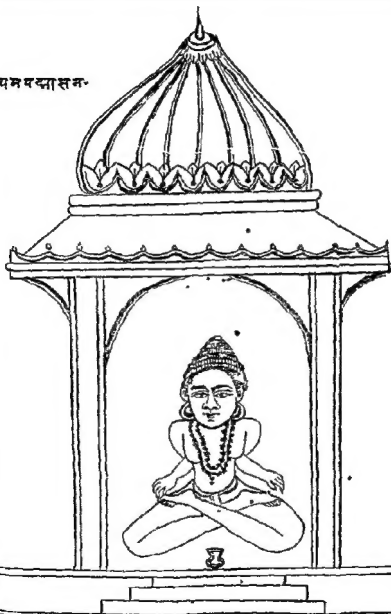


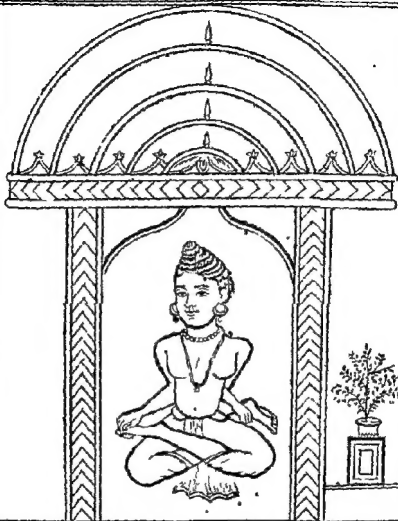
सतानरः

पद्मसुतः



प्रथमवदनासन-

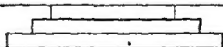
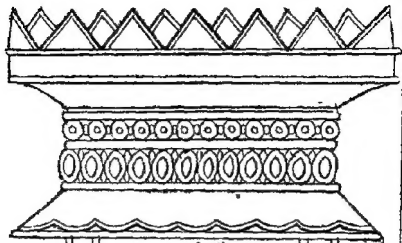




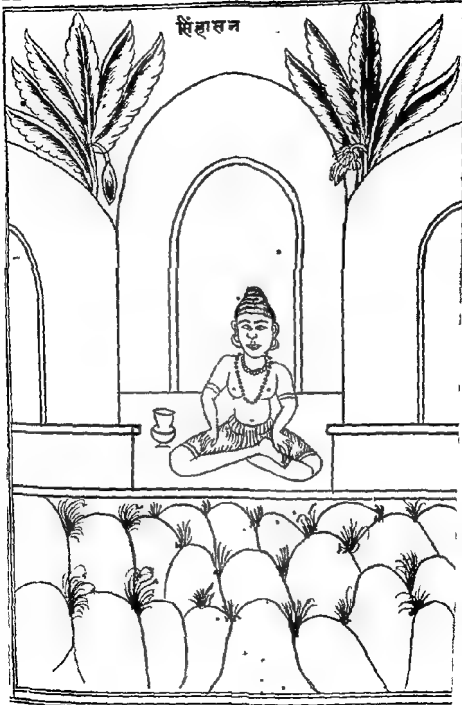
मत्सेन्द्रासन.



धनुरास न०



सिंहासन



महावन्ध.

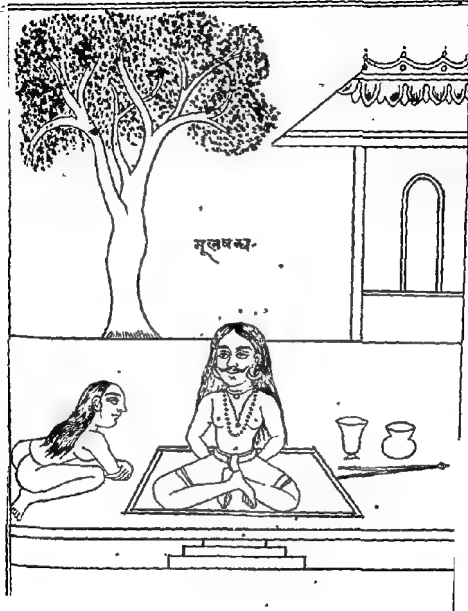




विपरीति.

वज्रोली.







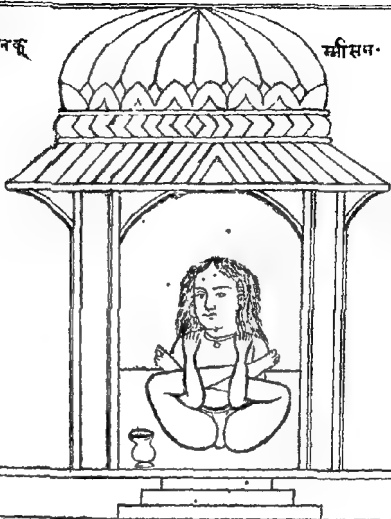
सतान्तर

पुनःपद्यास

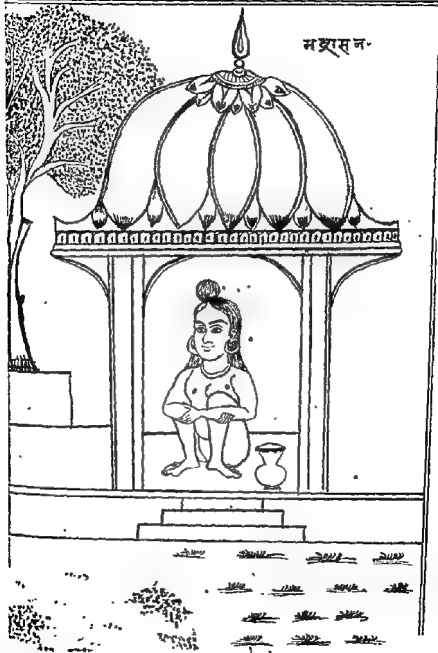


उत्तानकू

स्त्रीसन.



महासुन-



कुक्षुयसन.



महावेद्य.



अथ घेरण्डसंहिता ।

एकदाचण्डकापालि गर्त्वाघेरण्डकुट्टिमम् ।

प्रणम्यविनयात्भक्त्या घेरण्डपरिपृच्छति ॥१॥

एक समय चण्डकापालि नामक कोई एक योगीश्वर गिराभिलाषी, घेरण्ड नाम एक गृहे भारी योगेश्वर की कुटी को गये और विनयपूर्वक भक्ति सहित प्रणाम करके घेरण्ड महाराज से पूछने लगे । क्या पूछते हैं, और यह क्या चाहते हैं वो भीचे दर्शन किया जाता है ॥

घटस्पयोगयोगेश ! तत्त्वज्ञानस्यकारणम् ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगीश्वर ! यद्ग्रन्थो ॥२॥

श्री चण्डकापालिने कहा कि हे योगेश ! तत्त्वज्ञानका कारण घटस्प (शरीरस्प) योग है वो। इस समय मेरी वृद्धा उमर कुछ की हुई है । हे योगेश्वर ! हे प्रभो ! आप कृपाकर उसे सुनाइये ॥

सात्पर्य यह कि ज्ञान दो प्रकार का होता है एक वाचस्प ज्ञान जो कि पशु पक्षी कीट आदि की भी है जिससे कि पशु भी अपनी खाद्य वस्तु पान भूना छीहर करके पचान करी नहीं खाता और पक्षी आदि भी ज्ञान के तिनगे नहीं भगती । और दूसरा विश्व ज्ञान पद्वी जिससे कि अमल कालिक मुख स्वच्छन्दता प्राप्त होने के उपाय सूक्तते हैं । भूमिका में कहा जाये है कि योग विद्या शरीर वाहन का एक प्रधान अंग है बिना शरीर के सत्त्व रहने से अमल कालिक मुख स्वच्छन्दता लाभ के उपाय नहीं हो। सति इससे अमल कालिक मुख स्वच्छन्दता लाभ के उपाय का ज्ञान तत्त्वज्ञान कहलाता है । यह शरीर के आधेन है इसी विचार का स्थिर करके चण्डकापालि नामक जिज्ञासु क घटस्प अर्थात् शरीरस्प योग का तत्त्वज्ञान का कारण कहके घेरण्ड महाराज से पूछा ॥

साधुसाधु महाबाहो ! यस्मात्प्रं परिपृच्छसि ।

कथयामि हि तेवत्स ! सावधानोऽवधारय ॥३॥

चिरंजमी ने कहा है महाबाहो ! अर्थात् बाहुबलशालिन् तत्रियवंश
भूषण जो तुमने मुझसे पूछा इससे मैं तुमको साधुवाद अर्थात् धन्यवाद
करता हूँ, हे वात्स ! मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होके सुनो ॥

तात्पर्य यह कि योगियों के पास अक्षर वेदी लोग ज्ञाया जाया
करते हैं जिनकी केवल ऐहिक चिन्ता रहती है, अर्थात् धन, मिट्टी, पुत्र
पौत्र कुटुम्ब आदि इन्हीं तथा दुनियाँमें सुपन्न कैले परशु यथार्थ सभी
मङ्गल भोगोंकी चिन्ता करनेवाले योगियोंके निकट बहुतही कम लोग
जाते हैं, फिर उक्त धन पुत्रादि जालचियों की प्रकृति जान कर ऐसे
योगी भी असंख्य मिलते हैं जो ताकते रहते हैं कि कोई योगी की चि-
ह्ना कैसे तो चिन उठावें, वे कृत्रिम योगी महाशय चण्डकापालि सरीस-
पुत्रों के प्रश्न को ऐसा उठावेंगे कहेंगे कि हमारे गुरु की आज्ञा है कि
किसी को मत बतायें जिसने ऐसा जान पड़ता है मानो सब इन्हीं के
हाथ में है परन्तु ऐसे हैं जैसे हाथी के पेट का कैया । अर्थात् देखनेमें पूरा
पूर भीतर कुछ भी नहीं । पहिले तो ठगों को छोड़ योग विद्या के ज्ञा-
ननेवाले योगीही नहीं मिलते कदाचित् कोई मिले भी तो उसके सीखने
वाले दुर्लभ हैं ॥

यदि देवात् कोई उत्संगी भगव्य उनके पास गये तो योगी महा-
शय बहुत ही प्रसन्न होते हैं जैसे कि चिरंज महाराज ने चण्डकापालिकों
प्रश्न करनेपर धन्यवाद दिया । इससे हम यह भी यहांपर अपने पाठकों
को आश्चर्यजनक करते हैं कि जो लोग योगाभ्यासी बने रहस्यों के यहां
भीज उठाते हैं और पूछने से या तो कोप करते हैं या कहते हैं हमारे
गुरु की आज्ञा बताने की नहीं है उन पाठकियों को कभी न समादर
करे शक्ति जहा तक हो सके दख दिताने का यत्न करे ॥

घेरण्ड महाराज ने जब मन्त्र कर्ता चरुकापालि जी को चण्डबाद दिया तब द्वय के योग में सब योग का और कपट का जो सब फल है उससे कहने लगे ॥

नास्तिमाया समंपापं, नास्तियोगात्परं ब्रह्म ।

नास्तिज्ञानात्परो बंधुर्नाहङ्कारात्परोरिपुः ॥१॥

माया अपरित कांटा प्रपञ्च (जैसे कोई रोगी लोग यह दिखाया करते हैं कि हम योग विद्या से रांगा की चांदी, तांबाका सोना बनाया करते हैं, तथा मन्त्र यन्त्र टोटका टारकर के लोह से धन पुष्पादि दिया करते हैं इत्यादि बातें बना के लोगों के ठग करते हैं) इसकी बराबर दूसरा पापं दुनियां में नहीं है । इन सब प्रपञ्च कृत पापियों का भल अच्छा नहीं होता वे सदा आभ्यान्तरिक निर्बल रहते हैं अर्थात् डरते रहते हैं कि न जाने किस समय इनारे प्रपञ्च का कसाद खुल पड़े, इसके व्यपरीत सच्चाई का ज्ञान दिखाते हैं कि "नास्तियोगात्परं ब्रह्म" योग के परे कोई भी सच्चा बल मनुष्य का नहीं है । फिर यह बल किसके भरोसे है ? इसपर कहते हैं कि "नास्तिज्ञानात्परो बंधुः" ज्ञान ही मनुष्य का बाधु है अर्थात् सत् असत् का बिबेक जो लोग करके कुछ काम करते हैं उनके कार्य्य पुष्ट होते हैं । सत् असत् के बिबेक होने पर भी बहुत से मनुष्य के कार्य्य पुष्ट नहीं होते अर्थात् वे कार्य्य व्यपरीत बुलढाई होते हैं इसपर कहते हैं कि "नाहङ्कारात्परोरिपुः" अहङ्कार के परे कोई भी रिपु नहीं है जो कि सत् असत् वस्तु के बिबेक होने पर भी व्यपरीत फल है ॥

तात्पर्य यह कि बहुत से कपटी मनुष्य और ही मतलब लोग किसी महात्मा के पास जाते हैं पर वहां कुछ और ही प्रगट करते हैं इसी प्रकार महात्मा भी और ही मतलब ठाने बैठे रहते हैं परन्तु लोगों

को कुछ भीरही धोखा देते हैं । और उनके पास कुछ ऐसे भ्रष्टानी मनुष्य जाते हैं जो सोचे हों लाभ में फूल चढते हैं और वे अपने को सिद्ध समझ औरो को निरे अहमक समझ बैठ जाते हैं उनके उस अहकार से आगे और सुखोत्पादक विज्ञान, की सक्ति नहीं होती बल्कि जो कुछ सोचा बना रहता है वह भी कष्ट के कारण भड़ा हो जाता है । इस्ते अहकार की बराबर कोई भी दुश्मन दुनिया में नहीं है । इसके उपरान्त घेरह भी कहते हैं अहकार छोड़ के जिस वस्तु को सिद्ध किया चाहें उसमें अभ्यास करें, इसपर दृष्टान्त देते हैं ॥

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणिबोधयेत् ।

तथायोगंसमासाद्य तत्त्वज्ञानंच लभ्यते ॥ ५ ॥

जैसे अभ्यास करते २ ककरादि वर्ण चीन्ह पहने लगते हैं और उनके परिचय के अनन्तर ज्ञाना प्रकार के शास्त्रों में बोध हो जाता है इसी प्रकार योगाभ्यास करते २ तत्त्वज्ञान (जो पहिले कह जाये हैं) प्राप्त हो जाता है ॥

सात्पर्य यह कि अहकारी मनुष्य का चित्त अभ्यास में कम लगता है, यह अपनी गुरुआर्ह के आगे हमारे के उपदेश पर कम विश्वास लाता है इस्ते टिलाई आ जाती है जो अहकार को छोड़ कर और टिलाई को दूर घटाये ने अभ्यास में दृढ़ होने से योगशास्त्र का फल प्राप्त होता है । कबल कहने से नहीं ॥ इनके उपरान्त कहते हैं कि जब यह शरीर सोचे दिन बाद जरा ब्याधि से पलित हो नष्ट हो हो जायगी तब सोचे दिन के लिये जो इतनी सिद्धयना करें कि सब प्रकार साकारिण काराम छोड़ के एकान्त निर्जन्म में बैठ कर शरीर को कष्ट दें । इस पर दृष्टान्त देते हैं ॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते प्राणिनां घटः ।
घटादुत्पद्यते कर्म घटोयत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटोयत्रं गवात्रशात् ।
तद्वत्कर्म यशाज्जीवो भ्रमतेजन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

मले और गुरे काम करने से प्राणियों का शरीर उत्पन्न होता है और उस शरीर से फिर कर्म उत्पन्न होते हैं जैसे कि घड़ी घल गलट पुनट कभी नीचे कभी ऊंचे की ओर कलेश के बन हो प्रमती है इसी प्रकार सप्तम अष्टम निकट कर्मों के वस हो वह जीव भी कर्म और मृत्यु के चेर में बड़ा प्रमा करता है । कहते हैं कि, यदि जीव कर्म बन जन्म मृत्यु के चेर में बड़ा प्रमा करता है तो फिर किस उपाय से यह निट सका है इस पर दृष्टात देते हैं ॥ -

धामं कुम्भमिवाम्भस्यो जीर्णमागः सदाघटः ।

योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

यह शरीर ऐसा गलायमान है जैसे कच्चे घड़े में जल भरने से वह घड़ा गल जाता है । परन्तु जब उसको आग में पकाय लेते हैं तब कभी नहीं गलता इसी प्रकार इस शरीर को योग रूपी आग से अच्छी तरह पकाय के पक्की करनी चाहिये ॥

सात्त्विक यह कि यह शरीर मही से निर्मित कच्चे घड़े के समान बना है जैसे कच्चे घड़े में पानी भरने पर जल का गुण व्याप्त होने से यह कण्ठ गल के फिर मही में मिल जाता है, इसी प्रकार पाप तत्त्वों ने बने शरीर में जीव पानी रूप है जब यह शुभाशुभ काम करता है तब कण्ठ गला व्यापि उत्पन्न होने से कुछ दिन बाद नष्ट हो जाता है परन्तु जैसे घड़े को आग में अच्छी तरह पकाय लेने पर उसमें कोई बा-

हरी चोट न आये तो कभी नहीं नष्ट हो सकता वही हकारो धर्य रखिये ।
इसी प्रकार योग रूपी आग से (अर्थात् योगाभ्यास करके) अग्नी तार
मे यदि देह को पकूनी कर ले तो कभी नहीं नष्ट हो सकता जब तक कि
कोई बाहरी आकस्मिक बाधा न आता पड़ेगी ॥ इसी जो लोग जलम
रणादि से धारदार जन्म लेता नहीं चाहते तब शरीर पुष्ट कर वैदिक
विशुद्ध सुख भोग की आकांक्षा करने वालों को चाहिये कि योगाभ्यास
मे अपने शरीर को अवश्य विशुद्ध करें । इसके विशुद्ध करने से जब तक
यह इस सत्तार में निहित हो विचरण करें वा कहीं एक विशुद्ध स्थान
में बैठे रहें और जब इच्छा हो तब समाधि के द्वारा परब्रह्म में लप हो
का परम पुत्रपार्थ मोक्ष पद प्राप्त कर लें । अथवा जब फिर इच्छा हो
पर ब्रह्माश्रय दत्त दिव्याति दिव्य शरीर धारण कर सत्तार रूपी दावाग्नि से
जलते जुलते मनुष्यों का उद्धार करें और इसी प्रकार की योग क्रिया का
संचार कर जीवनमुक्ति ज्ञान स्वल्प दानें जो इच्छा हो करें करायें ॥ इति ॥

जब यह बात उपलब्ध हुई कि योग विद्या सीखने के पूर्व कौन से
सी साधनों की आवश्यकता है जिसको सप्रह करके कोई साधक कम
पूर्वक योगाभ्यास में प्रवृत्त हो उस पर प्रयत्न सात प्रकार के साधन
कहते हैं ॥

अथ सप्तसाधनं ।

शोधनं दृढताचैव स्थैर्यं धैर्यञ्च लाघवम् ।

प्रत्यक्षं च निलिप्तञ्च घटस्य सप्त साधनम् ॥३॥

चेरह महाराज कहते हैं कि योगजिज्ञा करने वाले के लिये शरीर
के सात साधन हैं जैसे—१ शोधन (दिहको शुद्ध करना) २ दृढता (मजबूती)
३ स्थैर्य (एकसमान सर्वदा देहका स्थिर रहना) ४ धैर्य (पचडाना नहीं) ५

लाघव (हलकापन) ई प्रत्यक्ष (मांख आदि इन्द्रियो से देखना, स्पर्श करना आदि) ७ निर्लिप्त (सब वस्तु का व्यवहार करना पान्तु मग से अलग रहना)

तात्पर्य यह कि शोधन दृढ़ता आदि सप्त साधन न करने से योगाभ्यास में पहिले तो मनही नहीं लगता, यदि च किसी, स्वभाव मिहु योगाभ्यासी का मन भी लगगया तो क्रम न रहने से बीच में कोप २ स्थान ऐसा आन पढ़ने का संयोग हो जाया करता है जिस्से बधर लघर कुछ नहीं सुक्त पड़ता और बिरक्तता जा जाती है वन सब कुछ मही हो जाता है इस्ते से सप्त साधनही योग शास्त्र के मूल समझे जाते हैं पड़े योगी इमी से सीधे जाते हैं जो कि, सप्त साधन संयत्त हैं । अथ सप्त साधन किस २ कर्म से और किस २ वस्तु से होते हैं उनका वर्णन करते हैं ॥

पट्कर्मणाशोधनञ्च आसनेनमवेदुदम् ।

मुद्रयास्थिरताचैव प्रत्याहारेणधीरता ॥१०॥

प्राणायामाल्लाघवञ्च ध्यानात्पूत्यक्षमात्मनि ।

समाधिनानिलिप्तञ्च मुक्तिरेवंनसंशयः ॥११॥

१ शोधन छ. कर्मों से होता है । २ आसनों से दृढ़ता होती है, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य । प्राणायाम से लाघव, ध्यान से अपने आत्मा में जो चाहै प्रत्यक्ष हो जाता है । इसीप्रकार समाधि के द्वारा निर्लिप्तता अर्थात् वासना रहित हो जाता है । इसीप्रकार साधनों ने अन्त में अवश्य मुक्ति हो जाती है इसमें संशय नहीं है । अथ उन सप्त साधनों में प्रथम शोधन जो पट्कर्मों से होता है उन पट्कर्मों को कहते हैं ॥

अथ षट्कर्माणि ॥

धौतिर्वाणस्तथा नेति लौलिकी त्वाटकं तथा ।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१२॥

जिन छे कर्मों से शोधन होता है वे ये हैं जैसे:- १ धौति २ बलि
३ नेति ४ लौलिकी ५ त्वाटक ६ कपालभाति ॥

तात्पर्य यह कि इन छः कर्मों के द्वारा देह शुद्ध हो कर चेतनाकी
चमत्कारी हो जाती है, यह शरीर मल से परिपूर्ण है, जिन २ अङ्गों में
जिन २ नाड़ियों में रोगकुपों में चर्मवेष्टियों में तथा अस्थि अन्धन में
जब मल लिपटा रहता है तब अङ्ग शिथिल रहते हैं । नाड़ियाँ छुट
जालसे रहित दबी चलती है । रोगकुपो में से भीतरी दुग्ध धातु निकलने
नहीं पाती बाहरी प्रिमल धातु घुसने नहीं पाती, चमड़ा फटा ररदा
रुस राज कोड़ा कुन्डो आदि से दूषित रहता है, इसी प्रकार वेष्टिया
ठीक २ लचक मचक नहीं रहती तथा अस्थि अन्धन भी हड्डियों को जकड़े
रहता है, यदि कभी शीघ्र गमनादि परिश्रम पडा तो पीडा उत्पन्न होती
है इत्यादि कारणों से शरीर के बाह्याभ्यन्तरिक मल का शुद्ध होना बहुत
ही आवश्यक है, इसी लिये शरीर के बाह्याभ्यन्तर मल शुद्ध करने के
लिये वेष्टिभागी लोग छः कर्म निर्धारित कर लिये हैं । जब इन छः
कर्मों में ध्यान का वर्णन करते हैं ॥

अथ धौतिः ॥

अन्तर्द्वैतिर्दन्तधौतिर्द्वैतिर्मूलशोधनम् ।

धौतिञ्चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥१३॥

धौति चार प्रकार की है, १ अन्तर्धौति (शरीर के भीतर साफ

करना) २ दस्त धौति (दातों को साफ करना) ३ हृद्दीति (हृदय को साफ करना) ४ मूल शोधन (नाभि शुद्धि) इस चार प्रकार की धौति से शरीर को निर्मल करना चाहिये ॥

अन्तर्धौतिः ।

वातसारं, वारिसारं, वह्निसारं, वहिष्कृतम् ।

घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥१४॥

धौति भी चार प्रकार की है । १ 'वातसार' (वायु दवानना) २ वारि सार (जल दवानना) ३ वह्नि सार (आगे कहेंगे) ४ वहिष्कृत (यह भी आगे कहेंगे) जब इन चारों में पहिले 'वात सार' का विधान कहते हैं ॥

अथ वातसारः ।

काक चक्षुवदास्येन पिवेद्वायुं शनैः शनैः ।

चातयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥१५॥

अपने मुँह को कीबे की टोट के समान बनाये भरातू देना ओठों को चिकोड़ कर कीबे की टोट भी करे और धीरे २ वायु पान कर ले पेट में उस वायु को चलाये फिरावे पश्चात् फिर धीरे २ उसी को मुँह क द्वारा छोड़े इसी क्रिया को वातसार कहते हैं । इसका फल जो वैद्यक शास्त्र से मन्वन्त रहता है यह चेरण्ड महाराज कहते हैं ।

वातसारं परं गोप्यं देह निर्मल कारणम् ।

सर्वरोग क्षयकरं देहानल त्रिवर्द्धकम् ॥१६॥

यह परम गोप्य वातसार कम देह निर्मल करनेवाला, सर्व रोग नाशक, और देह की अग्नि बढ़ानेवाला है ॥

तात्पर्य यह कि चेरह जी कहते हैं हे दण्डकापालि ! इस बातसार कर्म के योगी लोग परम गोप्य कहते हैं 'परन्तु हमने तुन से छिपाय नहीं रक्खा क्योंकि यदि छिपावेंगे तो हम कपटी योगी ठहरेंगे । क्योंकि हमारी धारणा काय स्वार्थ साधन की नहीं रही यह स्वार्थ साधन लोगही गोप्य कहके किसीसे नहीं बताते, यदि चेरह महाराजही यथावत् गोप्य माने रहते तो क्यों दण्डकापालि से क्रुद्धपट कह देते याने बिना सेवा दण्डन के एकही दिन की यात चीत से कह चले ? इससे सिद्ध हुआ कि सबसे योगियों की ओर से यह योग विद्या गोप्य नहीं रहनी चाहिये परन्तु अभ्यसरे स्वार्थ परायास योगियों की प्रकृति को दृष्टांत के चेरह महात्मा ने हुंनकर, 'बातसारपरंगोप्य' ऐसा कहा है । और नबं रोग लपकर इत्यादि ने साफ जाहिर है कि वैद्यक विद्या से सम्बन्ध रखता है ।

अथ वारिसारः ।

आकण्टपूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिवेच्छनैः ॥

चाळयेदुदरेऽथ चोदराद्वेचयेदधः ॥ १७ ॥

मूल से धीरे २ कण्ट पर्यन्त सूत्र पानी पीवे फिर उसको उदर में पुराये किरावे की । उसको अधोमार्ग अर्थात् गुदा द्वारा रेषन करे, इन को वारिसार कहते हैं ॥

‘ वारिसार परंगोप्यं देह निर्मल कारकम् ।

साधयेत्तं प्रयत्नेन देव देहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥

वारिसार भी पहिले की तरह परमगोप्य कहा जाता है यह देह को निर्मल करनेवाला है इसको यह यज्ञ से मान करमा चाहिये इसके साधन में देह देह प्राप्त होना है ॥

परम गोप्य का तात्पर्य यह है कि यह क्रिया यही कठिन है कठ

पट सब से नहीं हो सकती । बहुत से लोग ऐसे कठिन कार्य देा चार दिन करके आनस्य सब छोड़ देते हैं और फिर कहा करते हैं कि झूठा गपोड़ा है । इस प्रकार के लोगों से एक ठपकारी वस्तु की महिमा नष्ट हो जाती है । इस लिये सिवाय अधिकारी के और किसी को झूट पट नहीं बताना यह भी घेरगडजी का गूढ़ तात्पर्य है परन्तु सब किसी से गोप्य नहीं है । यह पक्का सिद्धान्त है ॥

अथ अग्निसारः ।

नाभिगून्धिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।

अग्निसारमियं धौति योगिनां योगसिद्धिदा ॥१९॥

उदरामयजं त्यक्त्वा- जठराग्निं विवर्द्धयेत् ॥२०॥

एवाधौतिः परागोप्या देवानामपि दुर्लभा ।

केवलं धौति मात्रेण देवदेहने भवेद्भुवम् ॥२१॥

नाभी की घषि को सौ बार मेरु पृष्ठ में संलग्न करे अर्थात् पेट को ऐसा खलावे कि नाभी घुस कर जाके पीठ की हड्डी में लग जाय करे । यह अग्निसार धौति कही जाती है । जो कि योगियों की योगकी सिद्धि देनेवाली है । यह पेट के रोगों को दूर करके जठराग्नि को बढ़ाती है और यह भी पूर्ववत् परम गोप्य है और देवताओं को भी दुर्लभ है । और कुछ करे वही नहीं परन्तु केवल इसी धौति से देव देह नियय हो जाता है । तात्पर्य यह कि रोगी कभी नहीं होगा ॥

अथ वहिष्कृत धौतिः ।

काकीमुद्रां शोषयित्वा पूरयेदुदरं महत् ।

धारयेदर्द्धयामन्तु चालयेदधोऽवर्त्मना ॥२२॥

एवाधौतिः परागोप्या न प्रकाश्या कदाचन ॥२३॥

पहिले कौंधे की टोट के समान मुड़ कर के ऐसी वायु पान करे जिसे उदर पूर्ण हो जावे फिर उसी वायु को उदर में जाये पहर तक रखे पश्चात् गुदा के द्वारा बाहर करे । यह भी धीति परम मे प्यडे इस को कभी किसी जेमे तेरेसे नहीं प्रकाश करना क्योंकि बिना दृढता किया मथेगी नहीं कूटी कहके निन्दा करने लगेगा । परन्तु दृढ से तो अवश्य कहना ॥

अथ प्रक्षालनम् ।

नाभिमग्नाजलेस्थित्वा शक्तिनाड्योर्विसर्जयेत् ।

कराभ्यां क्षालयेन्नाड्यो यावन्मल विसर्जनम् ॥

तावत्प्रक्षाल्य नाड्यो च उदरे वेशयेत् पुनः ॥२३॥

इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ।

केवलं धौति मात्रेण देवदेहा भवेद्भुवम् ॥२४॥

नाभी हुन जाये ऐसे गहरे जल में खड़ा हो के शक्ति नाडी अर्थात् पेट की त्रिगुली यही अतही को बाहर करके जय तक मल साफ न हो छे तब तक सूख जाये बाद पाक होने के फिर पेट के भीतर पीठार ले यह प्रक्षालन निधि गोपनीय है और देवताओं को को दुर्लभ है, केवल इस धौति से ही निधय देव देह हो जाता है ॥

अथ वहिष्कृतधौति प्रयोगः ।

यामाहुं धारणे शक्ति यावन् धारयेत्तरः ।

वह्निष्कृत महद्दौति स्तावन्नैव न जायते ॥२५॥

जय तक सापक जाये पहर तक श्याम रोकने की शक्ति न प्राप्त कर ले-तब तक यह महद्दौति क्रिया-का करना उचित नहीं है, क्योंकि य शक्ति के बिना अनिष्ट होने का हर रहता है ॥

अथ दन्तधौतिः ।

दन्तमूलं जिह्वामूल रध्रञ्जुर्कणायुग्मयो ।

कपालरध्रपञ्चैते दन्तधौतिर्बिधीयते ॥२६॥

दन्त धौति पाच प्रकार की है जैसे-१ दातो की जड़ को धोना, २ जिह्वा की जड़ को धोना ३ । ४ कान के दोनो छेदों को धोना, ५ तथा कपाल के रध्र को धोना ॥

दन्तमूलधौतिः ।

खादिरेणारसेनाथ मृत्तिकयाचशुष्कर्या ।

मार्जयेद्दन्तमूलं च, यावत्किल्बिषमाहरेत् ॥२७॥

खैर के रस से अथवा मिश्रित मृत्ती से दातो की जड़ को साफ करे और जब तक मैल न साफ हो। तब तक कुझा कर २ फिर २ साफ करे ॥

दन्तधौतिकोफलं ।

दन्तमूल पराधौति योगिनां योग साधने ।

नित्यं कुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाञ्च योगवित् ॥२८॥

दन्तमूलं वाविनादि कार्येषु योगिनां मतम् ।

योगियों के योग साधन में दन्तमूल धौति अर्थात् दात का धोना, सब से उत्तम कार्य है । इससे योग के जाननेवाले मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल दातों की रक्षा को किया करें दन्तधावन अर्थात् दातून आदि का करना योगियों का मुख्य काम है ॥

सात्पर्य्य यह कि दातों से और मन से ऐसा भारी सम्बन्ध रहता है कि यदि दात में मिला रहता है तो उससे एक प्रकार की दुर्गन्धि पैदा होती है जो अस्तिस्क में लग कर बुद्धि को अष्ट करहालती है, तथा माना प्रकार के रोग उत्पन्न कर शरीर को शिथिल करहालती है, इसके प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि जब दातों के बीच में कोई कस्तु जैसे आभका रंगा चौरा है कभी अटक जाते तो जब तक नहीं निकलते तब तक जिह्वा थिकल रहती है उसी पर लुरकुराया करती है । इससे और मन बेचैन रहता है दूसरी बात यह कि योगाभ्यास से जाग्रु की बृद्धि होती है अर्थात् योग चल से योगो लोग हजारों वर्ष जीते हैं जीवन पर्यन्त इन्द्रिया बिभ्रष्ट न हो इसलिये उनके रक्षाकी उपाय अवश्य करनी चाहिये । इसीसे दातों की जड़ को योगी लोग साफ रखने की क्रिया को योग साधन कह गये हैं । सास्तविक यह क्रिया सब के लिये उत्तम है और आरोग्यता का एक मंत्र है ।

जिह्वा शोधन ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।

जरामरणरोगावीन् नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥२९॥

पेरुड महाराज कहते हैं कि दन्त शोधन के पश्चात् जिह्वा शोधन कहते हैं । जिह्वा के शोधन से जीभ लम्बी हो जाती है जिससे कि जर (युक्ताई मरण तथा और २ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

जिह्वा मूल धौतिः ।

तर्जनीमध्यमानामा अङ्गुलित्रय योगतः ।

वेशयेद्गल मध्येतु मार्जयेद्धम्बिकामूलं ॥

शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषनिवारयेत् ॥३०॥

तर्जनी (अँगूठे के पास की अँगुली) मध्यमा (बीच की अँगुली) अ-
नामिका (अँगूठे से चौड़ी) ये तीन अँगुलियोंका गलेके मोतर प्रवेश करे
और जिह्वा की सड़ तक स्वार २ घस्से लगा कर धीरे २ को कुछ कफ का
रोज हो उसे साफ करे । फिर इसे कफ कात्र निकल जाता है ॥

मार्जयेन्नवनीतेन , दोहयेच्च पुनः पुनः ।

तदग्रं लौहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैःशनैः ॥३५॥

फिर तदमोत (नैत्र) को जिह्वा में लगा कर रोज २ बार २ दुहे
और फिर छोड़े के चिमटे से उसी जीभ का अग्र भाग पकड़ के धीरे २
रोज खींचा करे ॥

नित्यंकुर्यात् प्रयत्नेन रवेरुदयकेस्तके ।

एवंकृतेचनित्येच लम्बिकादीर्घतां व्रजेत् ॥३६॥

प्रति दिन सूर्य के उदय और अस्त समयमें यह धीति का अभ्यास
करे यदि इसी प्रकार नित २ यह क्रिया की जावे तो जीभ लम्बी हो
जायेगी ॥

सात्यमे यह कि मधुर कषाय आदि चट्टरमेा का स्वाद, जनी जिह्वा
के द्वारा अनुभव होता है, और तबका जो गुण ऐगुण है यह भी मारे
वायु रस जीभ की शिराओं के द्वारा समस्त नाड़ियों में कूट पट रूपान्त
होता है और यह रक्त में मिल कर या तो रोगादि उत्पन्न करता है,
या मज्जा मांस उत्पन्न कर के शरीर को मोटा कर देता है जिसे कि
मनुष्य मारे मज्जा मांसके चलनेफिरनेकी शक्तिसे भी विहीन हो निकम्मा
सा हो जाता है । सो इस क्रिया के द्वारा जीभके शिरा कठोर पड़ जाते
हैं और जो कुछ मधुर कषायादि रस खाता है वह कूटपट नाड़ियों में
गमन न करके आभाशय में जा रमेता है और वहा पित्त रस के संयोग

से पच कर क्रम से सार भाग आक्येंक नाडियोंके द्वारा समस्त शरीर में व्याप्त होता है और वायु तथा जलका लेश उस रसके साथ नहीं जाता इससे यह पुरुष बल पीरुष में समझाटे मनुष्योंसे अधिक होता है और उनके अङ्ग कहे रहते हैं । कुर्ती धनी रहती है और सहसा रोगोंसे भय नहीं रहता । इसी लिये योगी लोग दीर्घ जीवी भी हो सकते हैं और दूसरी बात यह है कि बिना जीम को सम्हालिये योगी लोग असुत पाल नहीं कर सके जिसकी क्रिया भागे कहेंगे ॥

कर्ण धौतिः ।

तर्जन्यानामिकाग्रोक्तान्मार्जयेत्कर्ण रंध्रयोः ।

नित्यमभ्यास योगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥३३॥

तर्जनी और अनामिका अँगुली के योग से कानों के दोनो छेदों को प्रति दिन साफे करे तो एक प्रकार का विशुद्ध नाद प्रगट हुआ करता है ॥

सात्पर्य यह कि एक तो कर्ण में मल नहीं रह जाता जिस्से कि घषिरादि अथवा कर्ण मुलादि रोग उत्पन्न होते हैं । दूसरी बात यह भी है कि मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही जो अभ्यक्त नाद सुनाई पड़ता है वह भी परिज्ञात हो जाता है । जिस्से कि मनुष्य अपनी मृत्यु जान कर उत्तम कर्म उत्तम स्थान या उत्तम समय का आश्रय ले सकता है ॥

कपाल रंध्र शोधन ।

वृद्धाहुष्टेन दक्षेण मार्जयेद्भ्राल रंध्रकम् ।

पुनमभ्यास योगेन कफदोषनिवारयेत् ॥३४॥

नाडीनिर्मलतायाति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।

निद्रातेभोजनातेच दिनान्तेचदिनेदिने ॥३५॥

दहिने हाथ के अंगूठे के द्वारा प्रतिदिन सोय के ठठे तब मोचन के अन्त में, तथा सूर्योस्त समय में, कपाल रश्म अर्थात् शिर के बीच में जो गड़्हा रहता है उसे जलही से साफ करै । इस प्रकार के अभ्यास में भीतरी कफ का दोष भूट हो जाता है । नाडिया निर्मल हो जाती हैं और दिव्य दृष्टि होती है अर्थात् बहुत दूर तक देखने की शक्ति बढ़ जाती है ॥

हृद्घौतिः (हृदय शोधन) । -

हृद्घौतित्रिविधांकुर्या दंडग्रमनवाससा ॥३६॥

हृद्घौति अर्थात् हृदय साफ करने की विधि तीन प्रकार से है, १ दण्ड धौति, २ ग्रमन धौति, ३ वास धौति ॥

रंभादण्डं हरिद्राया वेत्रदण्डतपैवच ।

हृन्मध्येचालयित्वा तु पुन प्रस्थाहरेच्छूनै ॥३७॥

केला के बीच का सार भाग उसका दण्ड या हरिदी के वेत्र का दण्ड अथवा चीकन केत का दण्ड बनाय के हृदय के बीच धीरे २ प्रवेश करके फिर धीरे २ बाहर किया करै । इसी का हृद्घौति कहते हैं ॥

दण्ड धौति ।

कफपित्ततथाक्लेद रेचयेदूर्ध्वग्रत्पना ।

दण्डधौनिविधानेन हृद्गोग नाशयेद्भ्रुवम ॥३८॥

इस दण्ड भीति के करने से, कफ पित्त तथा क्रोद (खिन्ना) आदि विकारी मल मुह के द्वारा हृदय से निकल बाहर होते हैं, जिसे कि हृदय के समस्त रोग निश्चय नष्ट हो जाते हैं ॥

वमन धीति ।

भोजनांतेपिवेद्वारि आकंठपूर्णितंसुधीः ।

ऊर्ध्वदृष्टिंक्षणांकृत्वा तज्जलंयमयेत्पुनः ॥

नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तनिवारयेत् ॥३९॥

बुद्धिमान् पुरुष भोजन के अन्त में कुछ पथ्यन्त जलपिये फिर थोड़ी देर तक ऊपर की ओर ताकता रहे फिर थोड़ी देर के बाद सही जल के समान कर हाँसे इसी का वमन धीति कहते हैं । इस वमन धीति का प्रतिदिन अभ्यास करने से कफ और पित्त नष्ट हो जाते हैं ॥

विवेचना ।

वमन करनी में ऐसा अभ्यास करें जिसमें अन्न न गिरनेपाये केवल जल मात्र गिरने और भोजनान्त से भोजन के उपरान्त ही वमन नहीं करना समझे रहना ४ । ५ घंटे बाद चाहिये तात्पर्य यह है कि राती पेट में वमन न करे ॥

अथ जल पीके आकाश की ओर ताके और वमनी करने लगे, यदि जल न गिरे तो किञ्चित् झुकी हाथकर गिराय दे । इसी प्रकार अभ्यास करते २ फिर आगही गिरने लगेगा ॥

अथ जल पीकर ऊपर ताकेंतय कुल १० मिनटि इससे अधिक नहीं इत्यादि और २ भी यार्ते शोच से ॥

वासधौतिः ।

चतुरङ्गुल विस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्विशेत् ।

पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥४०॥

चार अङ्गुलका चौड़ा और कमसे कम ५ हाथ लम्बा नहीन कपड़ा लेकर धीरे २ निगल जाये, और फिर नमको धीरे २ निश्वास बाहर करे, इसी को वास धौति कहते हैं ॥

गुल्मज्वर श्लेहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।

आरोग्यं बलपुष्टिञ्च भवेत्तस्य दिनेदिने ॥४१॥

वास धौति अभ्यास करने से गुल्मरोग, श्लेहरोग, कुष्ठरोग, तथा कफ और पित्त रोगों का नाश होता है और अभ्यास करने वाले को आरोग्य बल पुष्टि ये सब शरीरक शुद्ध दिन २ मिलते हैं ॥

सात्पर्य्य-जो नाना प्रकार के पदार्थ भोजन किये जाते हैं उनमें से एक प्रकार का थोड़ा युक्त खार पैदा होता है जो थोड़े दिन बाद गाढ़ा हो कर नाडियों का मुख रोक लेता है । और अन्त रस शरीर संचारी नहीं हो कर भल मूत्र के द्वारा निकल जाता है जिस अन्त रस से, शुक्र बनता है, जब अन्त रस शरीर संचारी नहीं होने पाता तो शुक्र बन हो जाता है, इससे शरीर दुर्बल (कमजोर) हो जाता है, परन्तु इस घास धौति के द्वारा यह खार या थोड़ा रोग २ निकल बाहर होता है नाडी मुख साफ रहता है, यस शुक्र की वृद्धि अमायास होती है और यह शुक्र पुष्ट होता है, जिससे शरीर में कान्ति बल आदि उपरोक्त समस्त आरोग्यता भी आपसी आप प्राप्त होती है ॥

मूलशोधन ।

अपान कूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।

तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन मूल शोधनमाचरेत् ॥४२॥

जब तक मूल शोधन अर्थात् गुच्छ द्वार साफ नहीं होता तब तक अपानवायुकी कूरता अर्थात् कहापन बनारहता है । और गुच्छसे वायु कष्ट से निवृत्तता है । इसे सुब प्रकारके यत्नसे मूल शोधन करना उचित है ।

पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाहुलिनापिवा ।

यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणा च पुनपुनः ॥४३॥

कच्ची हलदी की जड़ से वा मध्यमा अंगुली से बार २ यत्नके सहित जरा द्वारा गुच्छ द्वार साफ करना चाहिये ॥

वारयेत्कोष्ठं काठिन्यमार्ज्जिणं निवारयेत् ।

कारणकान्तिपुष्ट्योश्च दीपनं वद्विमण्डलम् ॥४४॥

मूल शोधन के द्वारा कोष्ठ काठिन्य अर्थात् पेट के भीतर कहापन तथा अंग की अजीर्णता बिमल होती है इसी प्रकार देह की कान्ति शरीरकी पुष्टता और अठराग्निकी वृद्धि होती है ॥

तत्पर्यं—मनुष्य में वायु प्रकृति के अनुष्य होते हैं जिनका कोठा हर दण कहा रहता है और कब्ज की गिनायत बनी रहती है फिर यहातक होता है कि कभी २ वायु बरन भी नहीं होता जिससे आग या अजीर्ण हो जाया करता है और अन्त में पेट में भी पीड़ित हो कर चढ़ा कष्ट पाया करते हैं परन्तु ऐसे मनुष्य यदि मूल शोधनाद क्रिया से शरीर आरोग्य किया करे तो सब कष्ट निवृत्त हो जाते हैं । यदा पर एक यात

असम्भयता की भी कही जाती है पाठक गण समा करेंगे । अन्तर ऐसेभी मनुष्य देखे गये हैं कि जो योग विद्या से आलसी होकर कष्ट के कारण कुकर्ण द्वारा पीडादि निवारण किया करते हैं । अर्थात् गुदा मैथुन कराय के चैन का मार्ग निकाल लेते हैं । इस कर्म में ऐय्यास और मोटी तोड़ वाली धनी अन्तर होते हैं । देखिये यह कैसा अन्धाय, कार्य है । अन्धाय के सिवाय उनकी अंतर्द्वियां इसी कर्म से कमजोर हो जाती हैं और कष्ट पट मर्क गामी भी हो जाते हैं । इसी निमित्त चिरह, मुहा मुनि ने यह योग क्रिया निकाली है जिसमें रोग शान्ति और निर्मल बुद्धि आदि अनेक गुण हैं, जिसके, यह उपरोक्त शिफायें हो वे अवश्य इस क्रियाको साधन करें ॥

अथ वस्ति प्रकरणम् ॥

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वावस्तिः स्याद्विधिर्वास्मृता ।
जलवस्तिं जले कुर्याच्छुष्कवस्तिं संदाक्षितौ ॥४५॥

वस्ति दो प्रकार की है—जल वस्ति और शुष्क वस्ति, जलवस्ति जल से, तथा शुष्क वस्ति स्थल में साधन करना चाहिये ॥

जलवस्तिकी विधि ॥

नाभिर्मग्नं जले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनं ।

आकुञ्चनं प्रसारञ्च, जलवस्तिं समाचरेत् ॥४६॥

नाभी डूब जावे ऐसे जल में बैठ कर उत्कट आसन बैठ कर गुदादेश को सिकाड़े और फैलावे । इसी को जलवस्ति कहते हैं । (उत्कट आसन आसनों के प्रकरण में देखा)

वस्तिकाफल ॥

प्रमेहञ्च उदावर्तं, क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत्स्वच्छंद देहश्च, कामदेव समो भवेत् ॥४७॥

जल वस्ति के साधन से प्रमेह रोग सदायत रोग (१३ रोग हैं) क्रूर वायु (जो यही कठिनता से वायु छूटता हो) रोग नष्ट होते हैं, और साधक स्वच्छ शरीर (देह कायू में रहे) तथा कामदेव की भाति रूप-याम (देह में कान्ति आ जाती है) हो जाता है ॥

दूसरी स्थल वस्ति

वस्तिपश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ।

अश्विनी मुद्रंयापायु माकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥४७॥

स्थलही में पीठ की ओर बसाया हो कर पड़े और क्रमशः गुह्य के द्वार को बलावे इसी प्रकार अश्विनी मुद्रा (जाने मुद्रा प्रकरण देखो) के द्वारा गुह्य को सिकोड़े और फैलावे, ऐसा करने से स्थल वस्ति साधी जा सकती है ॥

फल ॥

एवमभ्यास योगेन कोष्ठदीपं न विक्षते ।

विवर्द्धयेज्जाठराग्निं मामघातं विनाशयेत् ॥४९॥

इसी प्रकार स्थल वस्ति साधना करने से कोष्ठ में दीप नहीं रह जाते और उद्ग की अग्नि बढ जाती, तथा आमघातरोग भी नष्ट हो जाता है ॥

इति स्थल प्रकरणम् ॥

अथ नेतियोगः ॥

वितस्तिमान सूक्ष्मसूत्रं, नासानाले प्रवेशयेत् ।

मुखाद्विर्गमयेत् पश्चात् प्रीच्यते नेतिकर्मकम् ॥५०॥

शीताभर का महीन डोरा नाक के छेदों में डालकर पीछे उसे मुँह की ओर निकाल लिया करें । इसको नेतिकर्म कहते हैं ॥

फल ॥

साधनाद्वेतिकर्माणि खेचरी सिद्धि मामुयात् ।

कफदोष विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥५१॥

नेति कर्म साधन करने से खेचरी सिद्धि हो जाती है अर्थात् कफ दोष नष्ट हो जाता है और दिव्य दृष्टि हो जाती है । जिससे आकाश की बहुत सी वस्तुएँ देख पड़ती हैं ॥

सात्पर्य—युक्त प्रकार का कफ नासिका में जमा करता है और तब यह बहुत जग जाता है तब उस कफ के रेशे बढ़ते २ आख तक जा पहुँचते हैं, जिससे कीचड़ आने लगता है और फिर खेचरी कफ के रेशे आख में फैल कर नाड़ा बन छाय लेते हैं फिर आख ऊपर की त्यों घनी रहने पर भी नहीं देख पड़ता तभी नाड़ा को अर्थात् कफ के जाला का आख बनाने वाले नहकी से रोद् कर निकाल लेते हैं वह जाला मजबूत भी हो जाता है अर्थात् आख सीढ़ने का धीरे से नहीं फटता न हटता फिर यह योग इसको साफ नष्ट कर हासता है ॥

लौलिकी योग ॥

अमन्तयेगेतुन्दञ्च सामयेदुमपाश्वर्योः ।

स रोगा निहन्तीह देहानल विग्रहं नम् ॥५२॥

अति प्रथम वेग से पेट के दोनों बगल घुमावे, इसी का नाम ली
निकी योग है यह योग सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है और
देह की अग्नि को बढ़ाता है अर्थात् सुधा बहुत लगती है, और जो भी
जन किया जाता है वह पच जाता है ॥

त्रोटक योग ॥

निमेषोमेन्पक त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्य निरीक्षयेत् ।

यावदश्रूणि पतन्ति त्रोटके प्रोच्यते, वृचैः ॥५३॥

फलक का माजमा बन्द करके किसी सूक्ष्म वस्तु की ओर जब तक
आँखों से गिरते एक टक देखा रहे इसी को त्रोटक योग कहते हैं ॥

फल ।

एवमभ्यास योगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।

नेत्र रोग विनश्यन्ति दिव्य दृष्टि प्रजायते ॥५४॥

इसी प्रकार त्रोटक योग का अभ्यास करने से शाम्भवी मुद्रा सिद्ध
हो जाती है अर्थात् एक टक अनिमेष देखने का अभ्यास यदा तक बड़
जाता है कि वही जिसकी देर तक बिना पल भाजे ताकते रहे । इसे
इतनाही नहीं बल्कि नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं और दिव्य
दृष्टि भी हो जाती है अर्थात् बहुत सूक्ष्म वस्तु भी देख पड़ने
लगती है ॥

लाभ्यं—यह कि जैसे चरना लगाने से छोटी वस्तु बड़ी सी देख
पड़ती है उसी प्रकार इसका अभ्यास का भी फल है ॥

कपाल भाति योग ।

वातक्रमेणव्युत्क्रमेण शीतक्रमेणाविशेषतः ।

भालभातित्रिधांकुर्यात् कफदोषनिवारयेत् ॥५५॥

कपाल भाति योग तीन प्रकार का है । वातक्रम व्युत्क्रम, तथा शीतक्रम । इसके साधन से कफ के संपूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥

वातक्रम कपाल भाति ।

ईडयापूरयेद्वायुं रेचयेत्पिंगलापुनः ।

पिंगलयापूरयेद्वा पुनश्चंद्रेणरेचयेत् ॥५६॥

ईडा और अर्घात् नाक के बायें छेद से द्वारा वायुको खींचके भरै और पिंगला अर्घात् दहिने छेद से निकाले । इसीप्रकार दहिने छेद से वायु पूरण करै और फिर बायें छेद से निकाले ॥

पूरकरेचकंकृत्वा वेगेननतुचालयेत् ।

एवमभ्यासयोगेन कफदोषनिवारयेत् ॥५७॥

जब पूरक या रेचक करै अर्घात् स्थान सोंसे और छेद है तब बलद बाजी न करै क्रम से चोरे र साथे इसी प्रकार अभ्यास योग करनेसे कफ दोष समस्त नष्ट हो जाते हैं ॥

व्युत्क्रमकपाल भाति ।

नासाभ्यांजलमाकृष्य पुनर्ग्रक्त्रेणरेचयेत् ।

पायंपायंव्युत्क्रमेण श्लेष्मादोषनिवारयेत् ॥५८॥

दाओं नाक के छेदी से जल को खींच कर फिर मुट की राह से गिराता जाये और मुट की राह से भी जल पी र कर नाक की राह गिराये इसी को व्युत्क्रम कपाल भाति कहते हैं । यह कफ के समस्त दाओं को नष्ट करती है । यह क्रिया बहुत ही कठिन है और यह अभ्यास से निह्नु हो सकती है, नहीं तो मुख से पानी पीकर नाभिका से गिराना और नाक से पीकर मुट से गिराना होई नहीं सकता । बल्कि पिया हुआ पानी पेट में चला जाता है इसलिये सावधानी से करना ।

शीतक्रम कपाल भाति ।

शीतृत्पपीत्याशकत्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ॥

एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥५९॥

न जायते च वार्द्धक्यं, जरा नैव प्रजायते ।

भवेत्स्वच्छन्दो देहश्च कफदीर्घनिवारयेत् ॥६०॥

मुख से शीतकार कर (सरक कर) पानी पीये और उसे नाक के छेदी से गिराये दे, इसको शीतक्रम कपाल भाति कहते हैं । इस प्रकार योगाभ्यास करने से अनुप्य कामदेव की तरह सुन्दर हो जाता है और युवावस्था तथा युवापि की निर्मलता उसके शरीर में कभी नहीं आ सकती । फिर देह अपने कावू में रहती है और कफ के जितने दाय हैं सब नष्ट हो जाते हैं ॥

इति श्री घेरगडमंहितायां घेरगडचण्डिकापालि सम्पादे

पट् कर्म साधन नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोपदेशः

अब आसनों की विधि कहते हैं ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।

चतुरशीति लक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥१॥

तेषामध्ये विशिष्टानि षोडशानं शतं कृतम् ।

तेषामध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥२॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि पृथ्वी-में, कितने जीव जन्तु हैं उतने ही आसन भी हैं । शास्त्रकारों ने औसत दर्जे की राशी लाख बीस लाख ठहराया है इसी से प्रथम महादेव जी की राशी लाख आसन कह भी चुके हैं । परन्तु उनके बीच की सीमा कम में जहाँ की राशी आसन मिले हैं । उनमें भी केवल दस आसन मनुष्य लोक के लिये शुभ हैं बाकी १२ आसन देव लोक के लिये कहे गये हैं ॥

आसनों के भेद ।

सिद्धं, पद्मं, तथा भद्रं, मुक्तं, वज्रञ्च स्वस्तिकम् ।

सिंहं, च गोमुखं, वीरं, धनु, रासन मेवच ॥३॥

मृतं, गुप्तं, तथा मत्स्यं, मत्स्येन्द्रासन मेवच ।

गोरक्षं, पश्चिमोत्तानं, उत्कटं, सङ्कटं तथा ॥४॥

मयूरं, कुक्कुटं, कूर्मं, तथा चोत्तान कूर्मकम् ।

उत्तान मण्डुकं, वृक्षं, मण्डूकं, गरुडं वृषम् ॥५॥

शलभं, मकरं, उष्ट्रं, भुजङ्गश्च, योगासनम् ।

द्वात्रिंशदासनानितु, मर्त्यलोकेच सिद्धिदम् ॥६॥

सिंहासन १ पद्मासन २ भद्रासन ३ गुफासन ४ वज्रासन ५ स्वति-
कासन ६ सिंहासन ७ गोभुजासन ८ श्रीरासन ९ धनुरासन १० सूतासन
११ गुप्तासन १२ मत्स्यासन १३ मत्स्येन्द्रासन १४ गोरसासन १५ पश्चिमोत्ता-
नासन १६ सक्तटासन १७ संकटासन १८ जयूरासन १९ कुयकुटासन २०
कूर्मासन २१ उत्तान कूर्मासन २२ उत्तान मण्डूकासन २३ घृतासन २४
मण्डूकासन २५ गरुडासन २६ वृषभासन २७ शलभासन २८ मकरासन २९
संक्रासन ३० भुजङ्गासन ३१ भोगासन ३२ ये वृत्तीस आसन मनुष्य लोकके
लिये सिद्धि देने वाले हैं अर्थात् रोगादि निवारक तथा बल पुष्टि आदि
बहुविध गुणकारक हैं ॥

सात्पर्य—योगियों के मत से रोग दो प्रकार के होते हैं एक तो का-
यिक जो देह में उत्पन्न होते इन्द्रियों के द्वारा मन को ज्ञेश पहुंचाते
दूसरे मानसिक जो केवल मन ही में उत्पन्न हो के सभी मन को परम
ज्ञेश पहुंचाते हैं । योगियों ने यह परिश्रम से यह आसन प्राणायाम
आदि की "एक क्रिया व्यर्थ करी" निकाला है । आसनों के सम्बन्ध में
एक बात और भी कहना है कि जो लोग अक्सर देखा करते हैं कि वे
मुक्त से बाजीगर यौरे भी बहुत से जानम कर रहे हैं और देह के टोर
भाँज की वही २ क्रियाएँ दिखाया करते हैं । यह भी शारीरिक फायदा
पहुँचाती । इन्हीं से अक्सर निरोग रहते हैं । परन्तु वे उस विद्या का
तत्त्व नहीं जानते इसलिए उनके मानसिक ज्ञेश न दूर हो कर यत्कि
और भी बढ़ते हैं । यानी, मोह मृच्छादिक दोष यज्ञ के साधक को धष्ट
मार्गों कर हाँकते हैं । यहाँ पर इन्हीं लिये जनाया जाता है उधर की
दृष्टि उस प्रकार न जाये ॥

सिद्धासन ॥ १ ॥

योगनिस्थानकर्मद्वयमूलघटिकं सम्प्रीडययगुल्फेतरम् ।
मेढ्रे सम्प्रणिधायतन्तुचिबुकं कृत्वाहृदिस्थापिनम् ॥
स्थाणुःसंयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भुवोरन्तरम् ।
मोक्षचैत्रविधायतेफलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय साधक धीर की जड़ पाने एही को योगनिस्थान (जड़ा
लियों की योगि होती है ऐसी कल्पना कर अर्थात् अष्टकोश के नीचे)
में भिदाये और फिर दूसरा गुल्फ अर्थात् एही लिङ्ग के ऊपर परे, फिर
चिबुक यानी हड्डी को छातीमें लगावे फिर इन्द्रियों को बाधकर अर्थात्
एक ध्यान में बाध कर अचल दृष्टि यानी एकाग्रता लगा कर भीहो के
बीच के स्थान को देखे । इसी प्रकार करने से सिद्धासन कहा जाता है
और यह आसन जोड़ कल तथा अस्वास्थ्य नीरोग आदि फल का देने
वाला है ॥

सात्वर्ष्य—मोक्ष यह कि शरीर नीरोग रहने से बुद्धि बढ़ती है बुद्धि
बढ़ने से सत् जगत् का ज्ञान होता है, अब निवृत्त होकर जन्म मरणका
को दुःख है उससे छूट जाता है, अकाल मृत्यु से न मर कर काल मृत्यु
से मर कर परमात्मा में लय हो जाता है ॥

पद्मासन ॥ २ ॥

वामोरुपरिदक्षिणंहिचरणं संस्थाप्ययामंतथा ।
दक्षोरुपरिपश्चिमेनविधिना कृत्वाकराभ्यांदृढम् ॥
अंगुष्ठेहृदयेनिधायचिबुकं नासाग्रमाटोकयेत् ।
एतद्व्याधिचिनाशकारणपरं पद्मासनंचोच्यते ॥८॥

दहिना पैर बाईं हाथ पर तथा बाया पैर दहिनी जाघ पर रखे और पीछू की ओर से दहिने हाथ से दहिने पैर के अंगूठे को तथा बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को दूढ़ता से पकड़े । इसी प्रकार चिबुक (हाड़ी) छातो पर रखे और नासिका का अग्र भाग देखे । इसी का नाम भद्रासन है । यह आसन मनस्त व्याधि निर्माश करनेमें श्रेष्ठ है ॥

भद्रासन ॥ ३ ॥

गुल्फौचवृषणस्याधो व्युत्क्रमेणसमाहितः ।
पादागुष्ठेकराभ्यांच धृत्वाचपृष्ठदेशतः ॥ १ ॥
जालंधरंसमासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनंभवेदेतत् सर्वव्याधियिनाशकम् ॥१०॥

दोनों गुल्फ अर्थात् एही अङ्गुली के नीचे उलट के रखे बाहू पीठ की ओर से दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़े और जालंधर ग्रंथ (घाँसे में देखो) करके नासिका का अग्र भाग ध्यान करके देखे । इसी का नाम भद्रासन है और यह आसन सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है ॥

मुक्तासन ॥ ४ ॥

पायुमूलैश्वामगुल्फं दक्षगुल्फतथोपरि ।
शिरोग्रीवासमंकायं मुक्तासनंतुसिद्धिदम् ॥११॥

बाईं एही गुदा के ऊपर में लगावे उसी के ऊपर दहिनी एही रखे शिर और गला ममान भाग से रखे हिराने दुबने न पावे और सीधे शरीर करके बैठे, इसी को मुक्तासन कहते हैं । यह आसन साधक को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है ॥

वज्रासन ५ ।

लंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपार्श्वे पदाग्रभौ ।

वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धि दायकम् ॥१२॥

देनां जांघों को वज्र के आकार कर के गुदा के दोनों तरफ देनां लंघाभ्यां पदों के बीच में रखी और पैरों के बीच में रखी कर के वज्रासन कहते हैं । यह आसन योगियों को सिद्धि प्रदान करता है ॥

स्वस्तिकासन ६ ।

जानूर्ध्वोरन्तरे कृत्वा योगी पाद तले उभे ।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥१३॥

देनां जानु अर्थात् पिडुनी देनां जांघों के बीच करके देनां चरण तल भी इसी मध्य में रखी और पैरों के बीच में रखी कर के स्वस्तिकासन कहता है ॥

सिंहासन ७ ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतागतः ।

चितिमूलोभूमिसंस्थः कृत्वा च जानुनोपरि ॥१४॥

व्यक्ताव्यक्तौ जलंध्रं च, नासाग्र मवलोकयेत् ।

सिंहासनं भवेदेतत् सर्व व्यधि विनाशकम् ॥१५॥

देनां एही अर्धकोश के नीचे उलट कर परस्पर भिदाप के रखे और ऊपर की ओर बाहर कर ले-यौ देनां पिडुनी भूमि में लगाय दे तथा पिडुनियों के ऊपर मुख को खोल कर ऊँची करके । जाँघ पर बघ

(आगे देखो) के आश्रय से सरसिका का अग्रभाग देखे । इसी को सिद्धा-
सन कहते हैं । इसी आसन के द्वारा सब प्रकार की व्याधि विनष्ट
होती है ॥

गोमुखासन ८ ।

पादौच भमोसंस्थाप्य, पृष्ठपाद्वै निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य, गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥१६॥

दोनों पैरों को भूमि में स्थापन करके पीठके बगलोंमें लगावे और
स्थिर शरीर होकर बैठे तो यह गोमुख के आकार देख पड़ेगा, इसी का
नाम गोमुखासन है ॥

वीरासन ९ ।

एक पाद मथैकस्मिन् विन्यसेदुरुसंस्थितम् ।
इतरस्मिन्स्तथा पश्चाद्वीरासनं निर्वीरितम् ॥१७॥

एक जघन के ऊपर एक पैर रज के दूसरा पैर पीछे की ओर रखे
इसी को वीरासन कहते हैं ॥

धनुरासन १० ।

पसार्यपादौ भुविदण्डरूपो, करौचपृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्याधनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गम् जगदयोगीधनुरासनन्तत् ॥१८॥

दोनों चरण भूतल में समान भाव से दण्ड की तरह फैलाये दे
दोनों का पृष्ठ की ओर से ला कर दोनों पैरों को पकड़े और देह को
धनुष के आकार बनावे और उगटे पुलटे इसीको योगी लोग धनुरासन
कहते हैं ॥

मृतासन ११ ।

उत्तान शववहुभूमौ, शयानन्तु सवासनम् ।

शवासनं श्रमहरं, चित्तविश्रान्ति कारणम् ॥११॥

मरे मनुष्य की तरह घरातल में शयन करनेही से मृतासन होता है इसको शवासन कहते हैं यह आसन श्रम को विनष्ट करता है और चित्त विश्रान्त का कारण है ॥

गुप्तासन १२ ।

जानुनेरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।

पादोपरिच सस्याप्य गुदं गुप्तासन विदुः ॥१२॥

दोनों गुठुनों के बीच में दोनों पावों को गुप्त भाग से रखें और दोनों पावों पर गुदा को स्थापन करें । इसी को गुप्तासन कहते हैं ॥

मत्स्यासन १३ ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।

कूर्पराभ्यांशिरोवेष्ट्य, मत्स्यासनन्तु रोगहा ॥१३॥

मुक्त पद्मासन लगाव के हाथ के दोनों गुठुनों में शिर को लुपेटे और चित्त होके पड़ जावे । इसी को मत्स्यासन कहते हैं । यही आसन मगस रोगों का नाश करता है ॥

पश्चिमोत्तान आसन १४ ।

प्रसार्यपादौभ्रुविदगडरपौ, सन्यस्तभालश्चित्तियुग्ममध्यै ।

यत्नेनपादौचधृतीकराभ्यां, योगीन्द्रपोठपश्चिमोत्तानमाहुः ॥१४॥

दोनों पाय भूमि में दण्ड की तरह फैलाय दे और यत्र के सहित दोनों पाय हाथों से पकड़े और दोनों जाँघों के बीच अपने शिर को पीठारी, इसी को योगीन्द्र लोग पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं ॥

मत्स्येन्द्रासन १५ ।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वातिष्ठति यत्नतः ।

नम्रांग वामपादं हि, दक्षजानु परिन्यसेत् ॥२३॥

तत्र याम्यं कूर्परश्च याम्यं करेच वक्रकम् ।

भुवोर्मध्ये गतां दृष्टि पीठमात्स्येन्द्रमुच्यते ॥२४॥

पेट को पीठ की तरह करे अर्थात् पेट कुजा पड़े और बायें पैर को नवाय के दहिने पैर को जघा पर रखे, इसी प्रकार उस बायें पैर पर दहिने पैर को दही रखे । इसपर दहिने हाथ पर मुड़ के रखे और भीड़ी के मध्यस्थता बना देहे । इसको मत्स्येन्द्र आसन कहते हैं ॥

गोरक्षासन १६ ।

जानूर्वोरन्तरेपादौ उत्तानाव्यक्त संस्थितौ ।

गुत्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ॥२५॥

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्रं मवलोकयेत् ।

गोरक्षासनमित्याह योगिनां सिद्धिकारणम् ॥२६॥

दोनों जाघ और पिछुलियों के मध्य में दोनों पैर उत्तान करके गुह्र भाग में रखी फिर दोनों हाथों से दोनों घुँई झूँट ले । इसके बाद कंठ को मज्जुचिह्न काके नासिका का मध्य भाग अवलोकन करे । इसी को गो रक्षासन कहते हैं । यह योगियों का सिद्धि देने वाला है ॥

उत्कटासन ॥१७॥

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य घरांगुल्फेचखेगती ।

तत्रोपरिगुदन्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनं ॥१७॥

पैर को दोनों अँगूठों के मल से भूमि में स्थित हो के दोनों एड़ियों को मिरालम्ब हो के उठाये दे और उर्हीं एड़ियों पर गुदा को रखें । इसी को उत्कटासन जानना चाहिये ॥

सङ्कटासन ॥१८॥

वामपादंचितेर्मूलं सन्यस्यधरणीतले ।

पाददण्डेनयाम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ॥१८॥

जानुयुग्मेकरौयुग्म मेतत्सङ्कटासनं ।

बायां पैर और बायां गुठना भूमि में लगावे और दहिने पैरसे बायां पैर लपेट ले और फिर दोनों जांघों पर दोनों हाथ रखें । इसी को सङ्कटासन कहते हैं ॥

मयूरासन ॥१९॥

घरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्यां, तत्कूर्परस्यापितनामि
पार्श्वम् । उच्चासनेदण्डवदुत्थितःखे मयूरमेतत्प्रवदन्ति-
पीठम् ॥१९॥

हाथ के दोनों तलों से भूमि को चारण करे फिर हाथ की दोनों गाठियों को नाभी के दोनों धगलों में स्थापन करना और दोनों पैरों को कैलाश के ऊँचे आसन से दंडे की तरह आकाश में देह को उठावे । यही मयूर आसन है ॥

कुक्कुटासन ॥२०॥

पद्मासनं समासाद्य जानूवोरन्तरेकतै ।

कूर्पराभ्यां समासीनो मञ्जुस्यः कुक्कुटासनम् ॥२०॥

पद्मासन में बैठकर दोनों जंघा और दोनों पिंडुओं के बीचमें हाथ को पैठारे और दोनों हाथों की गाड़ियों पर मंच की तरह सठ के बैठे इसी को कुक्कुटासन कहते हैं ॥

कूर्मासन ॥२१॥

गुल्फौ च वृषणास्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ ।

ऋजुकायशिरो ग्रीवं कूर्मासनमितीरितं ॥२१॥

दोनों एड़ियों को अष्टकोप के नीचे चलटके रखें । शिर और ग्रीवा सपाँ देह को सीधे सीर पर रखें इसी को कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान कूर्मासन ॥२२॥

कुक्कुटासनमध्यस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम् ।

पीठं कूर्मवदुत्तानं मेतदुत्तानकूर्मकम् ॥२२॥

महिष्ठे कुक्कुटासन बीच से फिर दोनों हाथों से काधा पकड़ के कंधों की तरह उत्तान हो जाय, इसी को उत्तान कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान मण्डूकासन ॥२३॥

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः ।

एतद्भेदमेकवदुत्तानं मेतदुत्तानमण्डुकम् ॥२३॥

मंडूकासन में बैठकर हाथों के दिङ्गुनों से शिर धारण करके उत्तान हो जावे । इसी का नाम है उत्तान मंडूक ॥

वृक्षासन ॥२४॥

वामोरुमूलदेशे च याम्येपादौ निधावतु ।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥२४॥

दहिना पांशु बाई जांचके मूल अर्थात् कटुमें रखी और समान भाग से घुंघु की तरह खड़ा हो इसी का वृक्षासन जानना ॥

मण्डूकासन ॥२५॥

पादतलीपृष्ठदेशे ऽङ्गुष्ठे द्वे च संस्पृशेत् ।

जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मण्डूकासनम् ॥२५॥

दोनों पैर पीठ की ओर करके सनके दोनों अँगुठों परस्पर एक से बिहाये, तथा दोनों जांच सामने की ओर रखी, इसी प्रकार मण्डूकासन साधन करे ॥

गरुडासन ॥२६॥

जङ्घोरुभ्यां धरां पीड्य स्थिरं कायो द्विजानुना ।

जानूपरिकरं युग्मं गरुडासनमुच्यते ॥२६॥

दोनों जांचों से तथा दोनों पिंडुलियों से भूमि को दबावे और दोनों पिंडुलियों पर दोनों हाथ रखे । इसीको गरुडासन कहते हैं ॥

वृषासन ॥२७॥

• घाम्यगुल्फेपायुमूलं घामभागेपदेतरं ।

धिपरोतंस्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदम्भवेत् ॥२७॥

गुल्फ द्वार से दक्षिण एही के ऊपर रस के उसी के घाम भाग में
मार्थ पाय को उलटा करके रखते भूमि के स्पर्श करे इसी को वृषासन
कहते हैं ॥

शलभासन ॥२८॥

अधःस्थःशेतेकरयुग्मं धक्षेभूमिमवष्टभ्य करयोस्त-
लाभ्यां । पादौचशून्येच धितस्तिचोर्द्ध्वम् धदंतिपीठंशल-
भंमुनीन्द्राः ॥२८॥

नीचे मुह करके शयन करे । घसखल में दोनों कर स्थापन कर के
दोनों करतलों से धितका पकड़ कर दोनों पैर शून्य भाग में बिललभर
जंघे रखे इसी का नाम शलभासन है ॥

मकरासन ॥२९॥

• अधःस्थःशेते हृदयनिधाय भूमौचपादौ चप्रसार्य-
माणी । शिरश्चघृत्वाकरदण्डयुग्मे देहाग्निकारंमकरा-
सनन्तत् ॥२९॥

भूमि में घेदकुज पीठ लावे और नीचे मुह करके छातीको भूमि में
लगाय ले, और दोनों पैर फैलाय दे । फिर दोनों हाथों से शिर धारण
करे । इसीको मकरासन कहते हैं ॥

उष्ट्रासन ३० ।

अघास्यः श्वेते पदयुग्मव्यस्तं, पृष्ठे निधायापि घृतं कराभ्याम् ।
आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्थंगादं, उष्ट्रश्च पीठं योगिनो वदन्ति ४०

अघो अदन शयन करके दोनों पैर ऊँट के पीठ की ओर लावे । पीछे दोनों हाथों से इन्हीं पैरों को धर के मुह और घट डूढ़ भाग से सिकाड़ ले, इसी को उष्ट्रासन कहते हैं ॥

भुजंगासन ।

अंगुष्ठनाभि पर्यन्त मधो भूमौ विन्यस्यते ।
करतलाभ्यां घ्राण्यत्वा, उर्ध्वशीर्षं फणीवहि ॥४१॥
देहाग्नि र्बद्धते नित्यं, सर्व रोग विनाशनम् ।
जागर्ति भुजगी देवी साधनात् भुजंगासनम् ॥४२॥

पैर के अंगूठे से लेकर नाभि पर्यन्त देह की नीची ओर वाला भाग धरातल में अच्छी तरह स्थापन करके हाथ के दोनों तलों (पक्षों) से भूमि को अवनमन करे और सिर के फल की भांति शिर भागको चढावे, इसी को भुजंगासन कहते हैं ॥

फल ॥

इसके साधन से शरीर की अग्नि दिन २ बढ़ती जाती है । सात्पर्य यह कि भूत अच्छी तरह से लगती है, अन्न जो कुछ खाया जाता है अच्छी तरह से परिपक्व हो कर शरीरको पुष्टि पहुँचाता है । इसी कारण रोग राशि अर्थात् जिसने रोग इस आसन साधन के पूर्व रहे हों उसको

नष्ट करता है । इसी भासन के अभ्यास करने से मुजगी देखी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है । जिसका वृत्तान्त आगे लिखेंगे ॥

योगासन ।

उत्तानौचरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ।

आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं कर घुग्मकम् ॥४३॥

पूरकैवायुमाकृष्य नासाग्रं मवलोकयेत् ।

योगासनं भवेदेतत् योगिनां योग साधने ॥४४॥

देना पैरो का घिस कर देना जाघों के ऊपर स्थापित कर के देना कर उत्तान भाव से भासन के ऊपर रखी, बाद पूरक प्राणायामके द्वारा वायु खींच कुम्भक करे अर्थात् जहाँ तक हो। नकै घामे रहे और उसी समय में नासिका का अग्र-भाग अवलोकन करे । इनकी को योगासन कहते हैं । योग साधन विषय में यह आसन योगिया को अवश्य साधन करना चाहिये ॥

इति घेगडसहिताया ।हतायोपदेश ॥ २ ॥

तृतायोपदेशः

अथ मुद्रा कथनम् (अथ मुद्रा कहते हैं)

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उर्द्धायानं, जलंधरम् ।

मूलबन्ध महाबन्ध, महावेधश्च, खेचरी ॥१॥

विपरीतकरी, योनि, वज्राणी, शक्तिधारिणी ।

ताड्याणी, मांडवीमुद्रा, शाम्भवी पञ्चधारणी ॥२॥

आश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गिच, भुजङ्गिनी ।

पञ्चविंशति मुद्राणि, सिद्धदानीह योगिनाम् ॥३॥

घेरण्ड महाराज ने फिर कहा कि, पहिले जे भुजङ्गासन के फल में कुण्डलिनी शक्ति के जागने की खान कह जाये हैं उस कुण्डलिनी शक्ति के जागने में मुद्रा की चाहिये बिना मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति * से ई रहती है इसलिये पचीस प्रकार की मुद्रा हैं, उनके नाम ये हैं:-

* ग्रहयामल में लिखा है कि गुह्र के प्रसाद से यह से ई कुण्डलिनी शक्ति जागती है अन्यथा नहीं, यह कुण्डलिनी शक्ति क्या है उसपर कहते हैं कि देखके अन्तर्गत जो इ चक्र हैं उनमें कसलकी पल्लुरियोंके नसान नांग पेशियां आपस में जकड़ी कमल के फूल की तरह बिकुड़ी रहती हैं तथा जहां इ हड्डियों के जोड़ हैं वे भी "अस्थिसन्धन" नामक कठोर र मटों से जकड़े रहते हैं, इससे जब शरीर में नांश या रक्त सञ्चाल की अधिकता होती है तो वह शरीर मन की योग की सम में नहीं रहता, जिधर चाहिये उधर फैरिये, जिधर चाहिये उधर झुकाइये, जिधर चाहिये उधर मरोड़िये, जधवा शीघ्रगति से अङ्गोंको उठाइये बैठाइये, यह नहीं हो सक्ता । परन्तु जब देखकी कुण्डलिनीशक्ति जाग उठती है तो ये सब मन के अधीन हो जाते हैं, जिधर चाहिये फैरिये मरोड़िये उठाइये बिठाइये, लम्प, कम्प, लोर, क्लिटिक सबी सुती से हो सकते हैं, यह कुण्डलिनी शक्ति यही है कि रक्त, मश, पेशी आदि को जकड़ बन्दी, उसका जागना यह है कि रक्त, मश, पेशियों की जकड़बन्दी खुल जाये, यह सुखसाही उसका जागना है ॥

१ महासुद्रा, २ नभोसुद्रा ३ चहुँथान, ४ जलधर, ५ मूल्यग्रन्थ, ६ महाग्रन्थ, ७ महावेध, ८ खेचरी, ९ विपरीतकरी, १० योगिनी, ११ वक्रोणी, १२ शक्तिधारिणी, १३ ताड्यांगी, १४ मांडवी, १५ शाम्भवी, भार्या सुद्रा पांच प्रकार की है जैसे १ पार्विणीधारणा (१६) २ आम्भवी धारणा (१७) ३ वैश्याम्भवी धारणा (१८) ४ धाम्भवी धारणा (१९) ५ नभो-धारणा (२०) इसके बाद २१ अश्विनी, २२ पाश्विनी, २३ काकी, २४ मातङ्गी २५ मुनङ्गिनी ॥

मुद्रानां पटलं देवि, कथितं तव सन्निधौ ।
येनविज्ञात मात्रेण, सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥४॥
गोपनीयं सयत्नेन; न देयं यस्य कस्यचित् ।
प्रीतिदं योगिनां चैव, दुर्लभं मरुतामपि ॥५॥

श्री महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं कि हे देवि । तुम्हारे निकट सब मुद्राओं का नाम हमने कहा । इनके जान लेने ही से सब

लिखा है कि यह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्म रंघ की ओर मुख किये जाती है, तात्पर्य यह है कि हृदय कमल जिसको कलेजा कहते हैं उससे सब नादियाँ निकल कर समस्त शरीर में व्याप्त हैं और उनकी दीर्घ स-स्तिरक की ओर है, कहा कहीं घट्टा लगता है तो यह क्रमाहट विजुगी की शक्ति से भी शीघ्र भस्तिष्क में पहुँच कर मुख दुल घोष करती हैं । परन्तु जब तक उन रंग, नश, माहरी, पेशी आदि शरीर के टुकड़े अलग-अलग शक्ति कारक नहीं होते तब तक मानसिक वृत्ति की स्थिति स्थापकता नहीं आती और इसीसे यह निश्चय कर जान देने पर भी चित्त वृत्ति का निरोध जो योग का प्रथम लक्षण है नहीं प्राप्त होता । इसी लिये हठ योग द्वारा उस कुण्डलिनी-शक्ति को लगाना उचित है, इससे आसन मुद्रा आदि प्रयोग करना आवश्यक है ॥

प्रकार की चिह्नियां प्राप्त होती हैं । ये सब विषय परम गोपनीय हैं । जिस किसी को कभी नहीं देना चाहिये (क्योंकि बिना प्रतिज्ञा ये साधित हो नहीं सकते, चक्षुष 'जन दोगधित करैने, न बन पड़ेगा तो इस विद्या को झूठी कह कर बूढ़ प्रतिष्ठो का भी मन भड़काय देने, दोढ़े दिन बाद यह विद्या लोप हो जायगी) ये सब मुद्रा योगियों को ही परम प्रीति देनेवाली हैं । यह मुद्रा देवताओं को भी दुर्लभ हैं । तात्पर्य यह कि जो कोई साधन करेगा उसी की संपत्ति है, जिसको को कभी नवस्तर नहीं है ॥

महा मुद्रा ।

पापमूलं चामगुल्फे संपीडनवृद्धयत्नतः ।

याम्यपादंप्रसार्याथ करेधृतपदांगुलः ॥६॥

कंठसंकोचनंकृत्वा भुवोर्मध्यनिरीक्षयेत् ।

महामुद्रामिचामुद्रा कथ्यते चैव सूरिभिः ॥७॥

गुदा मूल को बाईं एड़ी से सूय मज्जयुती के साथ दबावे और दहिने पैर को फैलाय दे । और हाथ से पैर की अंगुली परे, फिर कंठ को संकुचित करके भीड़ों के मध्य भाग को देखे । इसी को पवित्र गण महामुद्रा नाम से पुकारते हैं ॥

इसका फल ।

क्षयकासंगुदावर्ते प्रीहाजीर्णज्वरन्तथा ।

नाशयेत्सर्वरोगाश्च महामुद्रातिसेवनात् ॥८॥

उपरोक्त महामुद्रा को अधिक संश्लेषण करने से अर्थात् अभ्यास करने से, क्षय कास, (क्षयों की खांसी) गुदावर्त (गुदा के चारों ओर चाले व्रण)

झीहा (पिलहं) जीर्ण ज्वर (पुषाणा ज्वर) तथा क्षीर २ सय प्रकार ।
रोगो को यह महाभुद्रा नाश करती है ॥

नभोमुद्रा ।

यत्रयत्रस्थितेयोगी सर्वकार्येषुसर्वदा ।

ऊर्ध्वजिह्वःस्थिरोभूत्वा धारयेत्पवनंसदा ।

नभोमुद्राभवेदेवा योगिनांयोगनाशिनी ॥९॥

जब जब योगी किसी कार्य में लगें तब २ सर्वदा ही ऊपर की ओर
जिह्वा करके कुम्भक द्वारा स्थिर हो पवन को धारण किया करे, यह
अभ्यास सदा रखने से योगियों के समस्त रोग भट्ट हुआ करते हैं, इसी
को नभो मुद्रा कहते हैं ॥

सात्पर्य यह कि हर काम में हर प्रकार की गुण त्रेगुणाकारी हवा
आपही गुण औगुणाकारी रही जाती है। यदि इस नभोमुद्रा का अभ्यास
रहीगा तो ऊर्ध्व कुम्भक के द्वारा, बाहर की हवा का श्वास बन्द करदेगा
तो मलीन दुर्गन्धित तथा विकारी हवा घेठ के भीतर न जा सकेगी ।
रोगों की उत्पत्ति अकसर हवा के साथ जहरीले रेशों के घेठ में जाने से
हुमा करती है सो देशकाल देख लसे तो बहुतही अवधाय हुआ करेगा ॥

उड्डीयानबन्ध ।

उदरेपश्चिमंतानं नाभेरूर्ध्वन्तुकारयेत् ।

उड्डीयानकुरुतेयत् तदविश्रातंमपाखग. ॥

उड्डीयानन्त्यसौवन्धो भृत्युमातङ्गकेशरी ॥१०॥

नाड़ी का ऊपरी भाग क्षीर पश्चिम द्वार को उदर के गग भाग में
सिकोहना चाहिये । अर्थात् उदर का मध्यम भागस्य गुह्यादि चक्र स्थित

भाड़ी समूह को नाभी के ऊपर सिंकोह के उठाना चाहिये, इसी को उड्डीयानबन्ध कहते हैं, यह उड्डीयानबन्ध मृत्यु के लिये मातंग और केशरी भाव से हैं, अर्थात् मृत्यु रूपी हाथी को यह सिंह की तरह मारहालता है, तात्पर्य यह कि मृत्यु इसके साधन से जल्द नहीं हो सकती ॥

उड्डीयान बंध का विशेष फल ।

समयात्प्रबन्धनात्तैतत् उड्डीयानं त्रिशिष्यते ।

उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥१३॥

लिलने मुद्रा ग्रन्थ कहे गये हैं सब में यह उड्डीयान ग्रन्थ विशेष अर्थात् उत्तम है । उड्डीयान ग्रन्थ के अभ्यास से, आपसी आप मुक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् और बहुत मानसिक व्यापारों की आवश्यकता नहीं रहती । तात्पर्य यह कि इसके साधन से सदसत् का ज्ञान स्वभाव ही से बढ़ता है ॥

शिव संहिता में इस मुद्रा का फल यह लिखा है कि जो योगी इस को प्रतिदिन चार बार करता है उसके नाभी का पवन शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार छः महीना अभ्यास करने से मृत्यु को जीत लेता है । अर्थात् उसके उदर की अग्नि प्रज्वलित होती है और जो कुछ खाता है वह सब भस्म हो के रक्त यानी (सकसर की वृद्धि करता है और रोगों को नष्ट कर हासता है, फिर इत्तामयी जी की संहिता में भी लिखा है कि जो लोग अत्यन्त युद्धे हो गये हों और इस उड्डीयानबन्ध का अभ्यास करें तो युक्त हो सके हैं और छः महीना प्रतिदिन करने से मृत्यु को जीत सके हैं ॥

इत सब योग ग्रन्थ से साफ साक्ष्य होता है कि यैद्यक शास्त्र से और योग शास्त्र से बहुतही सम्बन्ध है, इसी निमित्त हमारे भारतवर्ष

का वैद्यक स्राश सद्य देश के वैद्यक से नक्षम था, परन्तु अब इस समय आनमी लोगों ने मद्य नष्ट करवाला, बिक्रि विदेशी चिकित्सा के आधीन हो गये ।

जालंधर बंध ।

कण्ठसंकोचनंकृत्वा चिद्युकहृदयेन्यसेत् ।

जालन्धरेकृतेबंधे षोडशाधारबन्धनम् ॥१२॥

जालन्धरंमहामुद्रा मृत्योश्चक्षयकारिणी ।

कण्ठ संकोचन करके हृदय (डाँती) पर चिद्युक (डाँटी) रखनेही से जालन्धर बन्ध कहा जाता है, इसके साधन करने से सोलह प्रकार के आपर बन्ध हुआ करते हैं, और यह मृत्यु को भी नष्ट करवाला है ॥

जालंधर बन्ध का फल ।

सिद्धं जालन्धरं बंधं योगिनां सिद्धिदायकं ।

पराभासमभ्यस्येत् यो हिसिद्धो नात्र संशयः ॥१३॥

यह जालंधर बंध स्वयं सिद्ध है । यह योगियों को सिद्धि देनेवाला है । जो युद्धिमान यः महीना इसका अभ्यास करता है वह अवश्य सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥

गिय महिता में लिखा है कि इन जालंधर बंध को साधन कर के साधक हमीके द्वारा शरीरस्थ महंस्त्रद्वय कमल से भस्म को नीचे की ओर गनार के पान कर मक्का है और अगर यह अर्थात् मृत्यु कभी न हो ऐसा पद या मक्का है । वात्पयं यह है कि हृदय में एक न्याम ऐसा है जिसे खलना कहते हैं, यह यथायेमें कमल की तरह है और उग की

नसे पेशियां भी कमल दल की तरह हैं । ये पेशियां हृत्कारसे भी अधिक होंगी । आमाशय से जब भोजन की वस्तु का रस रक्त बन के जाता है तो पहिले वहीं जमा होकर नाड़ियों के द्वारा शरीर में व्याप्त होता है, इस मुद्रा से नाड़ियां तन कर पंचु छोड़, चार भाग को व्याप्त का रोग नष्ट करती है ॥

मूलबन्ध ।

पाणिर्गनाग्रामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः ।

नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डं सम्पीडय यत्नतः सुधीः ॥१४॥

मेढ्रं दक्षिण गुल्फेतु दृढबन्धं समाचरेत् ।

जराविनाशिनी मुद्रा, मूलबन्धो निगद्यते ॥१५॥

घायें पैर की एड़ी से गुदा प्रदेश को निकोड़े समके बाद नाभी की पन्थि को मेरु दण्ड (कमर के पीछे की हड्डी) से दबावे और उपस्थ को दहिने एड़ी से मजबूत दबा के रखें, इसी को मूलबन्ध कहते हैं । यह मुद्रा बुढ़ाई को नष्ट कर हालती है ॥

मूलबन्ध का फल ।

संसार सागरं तर्तुं सभिलपति यः पुमान् ।

धिरलेपुगुप्तीभूत्वा, मुद्रामेतां समभ्यरोत् ॥१६॥

अभ्यासाद्वृंघनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्भुवम् ।

सादृयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजितालसः ॥१७॥

जो मनुष्य संसार सागर पार होने की इच्छा करें वे धिरान प्यान (विरत) में गुप्त भाव से इस मुद्रा का अभ्यास करें । इस मूलबन्ध के

अभ्यास से निश्चय मनु सिद्धि (वायु को बाध) कर सकते हैं । इस से साधक आलस्य को परित्याग करके भीम हो यत्न पूर्वक इसको साधन करेंगे ॥

सात्पर्य यह है कि जब वायु काबू हो जायगा तब वह साधक जब पूरी सौर से वायु को गरीर में भर के कुम्भक प्राणायाम से अपने पीठ के भी संचालन करेगा तो जहा इच्छा हो वहां रुक सकता है । इसी साधना से बहुतेरे हाथ दे हाथ केंची जमीन से निराधार उठ जाया करते हैं ॥

महाबन्ध ।

ग्राम पादस्य गुल्फेतु पायुमानं निरीधयेत् ।

दक्षपादेन तद्गुल्फं सम्पीड्य यत्नतः सुधीः ॥१८॥

शनैःशनैश्चालयेत्पाणिं योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।

जालंधरे धारयेत्प्राणं, महाबन्धोनिगद्यते ॥१९॥

घायें गुल्फ (एड़ी) से गुदा द्वार को रोक लेना और दहिने पैर से घायें को दाबते हुये घीरे २ गुल्फ देग को चलावे और घीरे २ वही गुल्फ देग को चलावे । और जालपर बाध जो कह आये हैं उसके द्वारा प्राण वायु को धारण करे । इसी को महाबन्ध कहते हैं ॥

महाबन्ध का फल ।

महाबन्धः परोबन्धो जरामरण नाशनः ।

प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्वं वाञ्छितम् ॥२०॥

यह महाबन्ध जानकी मुद्रा संज्ञ मुद्राभोवे ओसदे और जरा (युद्धारं)

तथा स्मरण माश करने वाली है । इस महाग्रन्थ के प्रसाद से सब प्रकार के बाधित सारे जा सकते हैं ॥

महावेध कथन ।

रूपयौवनलावण्यं नारीणांपुरुषंविना ।

मूलवन्धमहावन्धौ महावेधंविनातथा ॥२१॥

महाग्रन्थं समासाद्य उद्भूतकुम्भकंचरेत् ।

महावेधःसमाख्यातो योगिनांसिद्धिदायकः ॥२२॥

जैसे पुनः के बिना नारियों का सुन्दर रूप, लवानी तथा लवण्य (सोमाई) निष्कल रहती है । वैसाही महावेध मुद्रा के बिना मूल बन्ध तथा महाग्रन्थ भी किसी काम के नहीं रहते । वहिने महाग्रन्थ मुद्रा करे किए लक्ष्मीयान बन्ध (जो कह आये हैं) मुद्रा करके कुम्भक प्राणायाम से वायु को निरोध करनेही से महावेध मुद्रा कही जाती है । इसी महावेध के द्वारा योगी योग सिद्धि प्राप्त किया करते हैं ॥

महावेध का फल ।

महाग्रन्थमूलवन्धौ महावेधतमन्विता ।

प्रत्यहंकुस्तेयस्तु सयोगीयोगविजयः ॥२३॥

नमृत्पुतोभयंतस्य नजरातस्यचिद्विद्वे ।

गोपनीयःप्रयत्नेन वेद्योयंयोगिपुंगवैः ॥२४॥

जो साधक प्रतिदिन इस महावेध के सहित महाग्रन्थ और मूलवन्ध का साधन किया करते हैं वेही योगियों में उत्तम योग विद्या के जानने

धासे कहे जा सकते हैं । सृष्ट्यु और दुहाई उनको कभी नहीं दयाय सक्ती यह मुद्रा परम गोपनीय है योगियों में श्रेष्ठ जन इसको हर किसी से नहीं कहते ॥

खेचरो मुद्रा ।

जिह्वाधोनादोसंछिन्नां रसनांचालयेत्सदा ।
 दाहयेन्नवनीतेन लौहयंत्रेण कर्पयेत् ॥२५॥
 एवं नित्यं समभ्यासात्स्त्रिमिका दीर्घतां व्रजेत् ।
 यावद्गच्छेद्भुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी ॥२६॥
 रसनांतालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ।
 कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा त्रिपरीतगा ॥
 भुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥२७॥

जिह्वा के नीचे जिह्वामूल और जिह्वा इन दोनों के जो नाड़ी जोड़े रहती है उसको काट देवे और नित्यही जिह्वा के जड़ भाग जिह्वा के नीचे, नदा चलाया करे । और जीभ को नवनीत (नेत्र) से दुहा करे और जोड़े को जिह्वा छेवनी (चिमटा) द्वारा खींचा करे । इसी प्रकार प्रतिदिन करने से, जीभ लंबी हो जाती है । क्रम से अभ्यास करते २ जीभ को इस प्रकार लंबी करे जिसमें जिन यह दोनों भीड़ों के बीच तक पहुँच जाये । फिर उसी जीभ को क्रम से तन्मुख के बीच से जाना चाहिये । तालु प्रदेश मध्यम गहूर (गहूटा) को कपाल कुहर कहते हैं । जीभ को उसी कपाल कुहर में ऊपर की ओर लुप्त के प्रवेशित कर के दोनों भीड़ों का मध्यम्यन अवलोकन करे, इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं ॥

खेचरी मुद्रा का फल ।

नचमूर्च्छा क्षुधादृष्ट्या नैवालस्यं प्रजायते ।

न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते ॥२८॥

जो मनुष्य इस खेचरी मुद्रा का साधन किया करते हैं उनको सूँझी, क्षुधा, दृष्ट्या, कभी नहीं लेश दे सके, और न कभी कालस्य आये, न रोग निकट आवे, और उनके समीप बुढ़ाई, वा मृत्यु कभी नहीं आ सकती, और वे देव देह हो जाते हैं । और भी:-

नाग्निना दह्यते गात्रं, न शोषयति मारुतः ।

न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्त भुजंगमः ॥२९॥

जो खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हैं, उनको अग्नि नहीं जलाय सकती, वायु उसको नहीं सुखाय सके । जल उसको शरीर को सुलाय नहीं सके । तथा उसको सर्प भी नहीं काट सके ॥

विपरीतकरी मुद्रा ।

नाभिभूले वसेत्सूर्य्यं स्तालुमूले च चन्द्रमाः ।

अमृतं ग्रसतेसूर्य्यं स्ततोमृत्युं वशीनरः ॥३०॥

ऊर्ध्वं च गमयेत्सूर्य्यं चन्द्रं अध आनयेत् ।

विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गीयिता ॥३१॥

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः ।

ऊर्ध्वपादः शिरोभूत्वा विपरीतकरीमता ॥३२॥

नाभि की जड़ में सूर्य (सूर्य नाड़ी) वास करते हैं और मुखनेत्र-
तुल्य की जड़ में चन्द्रमा (चन्द्र नाड़ी) है जब नीचे से सूर्य अपने तेज
से आकर्षण से देह स्थित अमृत को ग्रस कर लेते हैं, तब मनुष्य मृत्यु के
वश हो जाता है ॥

इस लिये ऊपर की ओर सूर्य को चठाना चाहिये और नीचे की
ओर चन्द्रमा को ले आना चाहिये । इसी का नाम विपरीतकरी मुद्रा है
और सब तन्त्रों में गुप्त रखी गई है ॥

इसकी क्रिया इस प्रकार है—भूमि में गिर कर स्थापन करे और
दोनों हाथों से भूमि ग्रस कर पैरों को ऊपर की ओर चठाय के सीधा
तड़ा करे और पूरक प्राणायाम से वायु रोक कर कुम्भक के द्वारा जहाँ
तक ठहरा जाये ठहरे । इसी को विपरीतकरी मुद्रा कहते हैं ॥

तात्पर्य—नाभि में एक नाड़ी ऐसी है जिसको जठराग्नि उत्तेजक
कहते हैं अर्थात् हृदय के पास जो पित्तस्त्राव नाड़ी है उससे बढ़ा गरम र
पित्त पोड़ा र बढ़कर रानी नदी के द्वारा जा कर आमाशय के अन्न को
पकाता है और वहाँ से अन्न रस निकल कर अन्न रस वाहक नाड़ी के
द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है, परन्तु जब पित्त रस अधिक प्रवाहित
हो कर उस नाड़ी में जाता है तब पित्त का पित्त हुआ कहा जाता है
अर्थात् पित्त की इतनी अधिकाई हो जाती है कि शरीर के समस्त रक्त
को गरम कर डालता है और अन्न रस की शक्ति को दूधित करके अनेक
प्रकार की पैलिक व्याधिया उत्पन्न करता है, फिर उन व्याधियों से म-
नुष्य बहुत जल्द मर जाता है, इस क्रिया के निवारण के वास्ते यह
विपरीतकरीमुद्रा कहा है, यानी गिर नीचे करके ऊपरकी ओर पैर चठाय
के प्रति दिन घंटे दो घंटे जहाँ तक ठहर सके किया करे तो यह पित्त
रस जो अधिकाई से नाभि की जड़ वाला नाड़ी में जाके निकार उत्पन्न
किया करता है वह नहीं होयै, अर्थात् यह पित्त रस जलीय पदार्थ है,

जल की गति नीचे की ओर है सो नीचे तालु नाड़ीकी ओर आकर कफ की नाड़ी जिसे चन्द्र नाड़ी कहते हैं आकर मिलेगा तो छेद (खिलार) बनके दन्तपायन आदि क्रियाओं से निकल आया करेगा, इस शरीर मोरोग रह कर दीर्घायु प्राप्त करेगा ॥

अन्तर जब पित्त कोष करता है तब नाभि के पास टटोलने से भाग की तरह जलता है, मूत्र गरम और लाल होता है, तन्मास बदल मोरस हो कर पीड़ा करता है, वैतिक पत्र होने से दाह, (जलन) दुषा (प्यास) आदि तेजसय उपद्रव शरीर भर में हो जाते हैं योगी लोग इन सब उपद्रवों से साफ बचे रहते हैं ॥

त्रिपरीतकरी मुद्रा का फल ।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत् ।

ससिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेपि न सीदति ॥३३॥

जो मनुष्य इस मुद्राको प्रतिदिन साधन करता है, वह जरा (मुढाई) और मरण से बचा रहता है, फिर वह सब लोको में सिद्ध हो जाता है और प्रलय होने पर भी अभय रहता है, जहाँ जाता ॥

अथ योनि मुद्रा ।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णाचक्षुर्नसोमुखम् ।

ध्रुगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्च साधयेत् ॥३४॥

काकीभिः प्राणंसकृष्य श्रपाने योजयेत्ततः ।

पट्चक्राणिक्रमोद्घात्वा हुं, हस-, मनुनासुधोः ॥३५॥

चैतन्य मानये देवी निद्रिताया भुजगिनी ।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य करांवुजे ॥३६॥

शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परंशिवेन संगमम् ।

नानासुखं विहारं च, चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥३७॥

शिवशक्तिसमायोगा देकान्तं भुविभावयेत् ।

आनन्दंचस्वयंभूत्वा अहं ब्रह्मेति सम्भवेत् ॥३८॥

यानिमुद्रा परागोप्या देवानामपि दुर्लभा ।

सकृत्तुलाभ संसिद्धिः समाविस्थः स एव हि ॥३९॥

प्रथम सिद्धासन (जो पहिले कह आये है) से बैठे, फिर कान, नास, नाक, मुँह से चार द्वारों को अँगूठे, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका इन अँगूठियों से ढाँप ले । अर्थात् कान के दोनों छेदों को दोनों अँगूठों से, दोनों नासों को दोनों तर्जनी से, दोनों नाक के छेदों को दोनों मध्यमा से, मुँह को दोनों अनामिका से ढाँपे । फिर काकी मुद्रा से प्राण वायु को आकर्षण करे और फिर उसे अपान वायु (अधोवायु) में मिलाय दे, उसके बाद शरीरस्थ जो छः चक्र हैं उनका ध्यान करे अर्थात् यह कहना करे मानों हम उन्हें देख रहे हैं उसी समय में "हुं" और "हंसः" इन दो मंत्रों के द्वारा भुजंगिनी रूप कुण्डलिनी देवी को जगावे । तथा जीवात्मा सहित उन कुण्डलिनी को महत्कार कमल में उठाय के ले जावे, और यह साधक इस प्रकार चिन्ता करे माने "मैं शक्तिमय होकर शिव के साथ प्रसंग में भागल्ल होता हूँ परम आनन्द भोग और विहार करता हूँ तथा शिव शक्ति के संयोग से महीं आनन्द भय प्राप्त हूँ" इसी को यानि मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा परम योगनीय है यह देखते तो भी दुर्लभ है इस मुद्रा को एक बार भी कोई साधक करे तो साधनेवाला पुनः सिद्ध हो जाता है, इसके द्वारा बहुत ही जल्द समाधि प्राप्त हो जाती है ॥

तात्पर्य यह कि-मनुष्य जिस वस्तु का अभ्यास जी लगा कर करे वही वस्तु उसके मनोवृत्ति में दृढ़ बहू हो जाती है। यदि मनुष्य रात दिन दुःख की कथा, दुःख की वार्ता, दुःख की आलोचना दुःख की चिन्ता करता रहे तो वह दुःख उसके तन मन में विन्धा रहता है। परन्तु यदि मनुष्य निरंतर सुख की ओर मन को लगाये रटे तो उस के समीप वदाही सुख रूपवान सा बना रहता है। इसीलिये योगी लोग दुःख की जगह भी सुखही ध्यान किया करते हैं। योग शस्त्र का यह सिद्ध मत है कि सुख दुःख समान भावना, परन्तु यह पात बिना अभ्यास नहीं हो सकती, चेरंड महाराज ने सब मुद्राओं को शरीर के दुःख निवृत्ति के लिये कहा है परन्तु इसको मानसिक दुःख निवृत्ति के लिये बताया है। अभ्यास करते-करते जब हम प्रकार की शक्ति हो जावे कि चित्त वृत्ति जिस में लगावे उसीमें चुभी रहे अन्यत्र न टले तो मनाधि मिट्ट हो गई। इस सब से बढ़ कर चित्त वृत्ति निरोध के अभ्यास को बढ़ाने वाली यह योनि मुद्रा है ।

शिव संहिता जादि ग्रन्थों में इस योनि मुद्रा को दूसरे प्रकार से कहा है परन्तु वह इस चेरंड महाराज की दर्शाई हुई योनि मुद्रा के तुल्य शीघ्र फलदायक नहीं है। यहां इस प्रकार लिखा है—प्रथम मन को पूरक योग से अपने मूलाधार पद्म में वायु में सहित पूरण करे बाद योनिस्थान (गुदा और लिंग के बीच के स्थान को योनि स्थान कहते हैं) को दोरी से सिकोड़ कर भगाकार बनावे। उसी समय में उस ब्रह्मयोनि में कामदेव का ध्यान करे, वह कामदेव-उस पुष्प की तरह लाल वर्ण कोटि सूर्य की तरह तेज, कोटि चन्द्रमा की भांति शीतल है यह भी चिन्ता करे फिर ऊपर परमाशक्ति को भी इसी प्रकार ध्यान करे कि मानों वे शक्ति अग्नि जिखा की तरह, सूक्ष्म रूप, चैतन्य भाव हैं और वे परमात्मा के सहित एकत्र हो मिली हैं। इस प्रकार ध्यान करना होगा फिर प्राणायाम के बल से शून्य, सूक्ष्म और फारस इन तीन प्रकार के मन्-

यद्यो से युक्त जीवात्मा कुण्डलिनी शक्ति के सहित सुषुम्ना के छेद हो के ब्रह्म मार्ग में जाता है । शिर के मध्य में जो नीचे मुख कमल है उसकी कर्णिका के भीतर कुण्डलिनी शक्ति परमात्मा के साथ सङ्गम में आसक्त हो रही है उसके संगम से पाटल बर्ण (कुछ सफेदी लिये पीला) तेजवान् कामन्द मय अमृत की धारा बहती है । जीवात्मा योग बल से मूलाधार के ऊपर हो के उठ कर उसी बहते हुये अमृत को पान करता है । इसी प्रकार फिर नाभ नीचे की तरफ निकल के मूलाधारमें स्थित ब्रह्मयोगिनि में आकर प्रवेश करे । इसी प्रकार साधक जीवात्मा को ब्रह्मयोगिनि में निकाल पैठार रूपी प्राक्यायान की मात्रा युक्त करे । इसी प्रकार प्राक्यायान तीन बार करना चाहिये । मूलाधार पद्म में ब्रह्मयोगिनि में प्राप्त कुण्डलिनी परमात्मा की प्राक्क रूपिणी हो रही हैं । इसी प्रकार निकाल पैठार के बाद फिर भी यही जीवात्मा कालाग्नि आदि शिवात्मक ब्रह्म योगिनि में लय प्राप्त होता है, इसी प्रकार चिन्ता करे । इसी को योगि मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा जितनी मुद्रा हैं सब में प्रधान है । इस के प्रभाव से साधक समस्त कर्म अच्छी तरह से सिद्ध कर सकता है । इन सब बातों का गूढ़ तात्पर्य यह है कि श्वाम के रोकने के सहित मानसिक वृत्ति को गिर तरफ लगाइये उसी तरफ यह लग कर उसी प्रकार का सुख दुःख अनुभव करेगा । भाव अपने मन को यदि पूरी तीर से इन कल्पना में लगायें कि हम नर्क कुण्ड में डुबोये जा रहे हैं, हमें लोहे के तप्त तंभों में कोड़े बिपकाय रहा है तो यही दुःख साक्षात् होगा, यदि इन्द्रामन पर घेरे देव लोक की सायान भोग रहे हैं ऐसी कल्पना की-जियेगा तो यही सुख प्राप्त होगा । इसी निमित्त मानसिक स्थिति के अभ्यास के लिये दृढ योग को घेरेंद महाराज ने उत्तम समझ कर ऐसी ऐसी क्रियायें निह्नु की हैं ॥

योनिमुद्रा का फल ।

ब्रह्महा भूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रा निबन्धनात् ॥४०॥
यानिपापानिघोराणि, उपपापानि यानिच ।
तानिसर्वाणिनश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥४१॥
तस्मादभ्यस्यन् कुर्याद्वादि मुक्तिंसमिच्छति ।

जो जो योनिमुद्रा साधन करते हैं, वे, यदि ब्रह्मघात भी कर चुके हों या पात घात कर चुके हों अथवा सुरा पान करते २ पिमादक हैं। गये हों, या गुरुपत्नी के साथ पात्राचरण कर चुके हों तो भी इनके महापापों से लिप्त नहीं होते ॥

और भी जो २ यद्दे २ भयानक महा पाप हैं, या जितने उपपाप हैं वे भी सब इस योनिमुद्रा के निबन्धन से मष्ट हो जाते हैं, इससे यदि कोई मुक्ति की इच्छा करे तो वह योनिमुद्रा का अभ्यास जरूर करे ॥

सात्यर्थ—ब्रह्मघात आदि पाप से छुटने का जहां कहीं फल जाता है वहां अप्सर लोग शूद्रा कर बैठते हैं कि यह तो और भी पाप का यद्दाना ठहरा यानी राज्ञ पाप करे और राज्ञ योनिमुद्रा आदि कर्म साधन करे तो अभी पाप नहीं लगेगा, 'अस जानें पाप करने के लिये एक अभय मार्ग ठहराया गया । धिक्घना—देवों रूपरके लोक में लिखा है कि 'एतैः पापैर्न लिप्येत' अर्थात् इन पापों से लिप्त न हो । सो लिप्त होने का क्या तात्पर्य है? भिन्न कहते हैं जो कि रात दिन उसीसे मन धन कर्म से लिपटा रहे, अर्थात् रागा रहे, धरन्तु जो शक्त योनि मुद्रा का अभ्यास करेगा वह कदाचित् ब्रह्म इत्या गुरु पत्नी

प्रसङ्ग आदि पापों में लिप्त अर्थात् मन सब कर्म से रात दिन लगा भी हो तो इस आनन्द की क्रिया में लगने से फिर उसको उधर के पापों के करने की फुरसत नहीं रह जावेगी । आप जानते हैं कि एक तुच्छ बात चीपड़ शतरंज का खेल है जिसमें कोई भी फल नहीं परन्तु जय मनुष्य का चित्त उधर लग जाता है तो रोटी खाना तक नहीं अच्छा लगता और यहाँ तक देखा गया है कि शाम से खेलने बैठे और सवेरा होगया, सूर्य उदय हो आये, निद्रा का सुरु भस्मीभूत कर, प्रिय समागम में तिलाञ्जलि दे पी-बारा-वह छकड़ी-कर रहे हैं, तो यदि योग की क्रिया में मन लग जावे तो कहिये फिर यह लिप्तता जोकि दिन रात मयानक पापों की ओर तुरङ्ग के समान दौड़ता हुआ मन विद्यान नहीं पाता पापों कर रह सका है ? अर्थात् योनिमुद्रा के अद्भुत सुख की साधना से ये सब भूल जावेंगे और यह सूझ चित्त उन सब महा पापों से तथा उप पापों से अनायास बच कर विशुद्धता लाभ करेगा, इसीसे श्लोक में एक पद लिखा है कि "योनिमुद्रा निवन्धनात्" अर्थात् योनिमुद्रा साधन के बन्धन से । तात्पर्य यह कि योनिमुद्रा का साधन उसको बान्धे रहेगा कि सी प्रकार वह महा पातक तथा उप पातकों के निकट नहीं जाने पावेगा, इससे यह सिद्ध भया कि कल के लिखने वाले चेरगुड महाराज ने मिथ्या नहीं लिखा, जो शक्त साधन करेगा यह अवश्य सब पापों से मुक्त हो सिद्धि भाग्य को प्राप्त होगा, अन्त में मुक्ति लाभ करेगा । चेरगुड जी ने साफ लिखा है कि जो मुक्ति की इच्छा करें अर्थात् यदि चाहे कि इन सब पापों से छूटें वेही इस मुद्रा का अभ्यास करें, तात्पर्य यह कि दूधरे से नहीं हो सकेगा ।

वज्रोणीमुद्रा ।

धरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्या ऊर्ध्वक्षिपेत्पादयुगंशिरःखे ।
शक्तिप्रतीधायचिरजीवनाय वज्रोणिमुद्रांमुनयोचदन्ति ४२

दानों हाथों की गंदारी से परातल को पकड़ के दानों पावों को ऊपर उठाव दे और चर गिर भी आकाश में उठाव दे केवल हाथ के बल सहार है, इसीको मुनिलोग वज्रोणीमुद्रा कहते हैं, इसके अभ्यास से शरीर की शक्ति (ताकत) बढ़ती है और बहुत दिन तक जी सकता है ॥

वज्रोणीमुद्रा का विशेष फल ।

अयंयोगयोगश्रेष्ठो योगिनामुक्तिकारणम् ।

अयं हितप्रदायोगो योगिनांसिद्धिदायकः ॥४३॥

एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेदध्रुवम् ।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ॥४४॥

भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत् ।

तथापि सकला सिद्धिस्तस्य भवति निश्चितम् ॥४५॥

यह मुद्रा साधन रूप योग सब योगों से श्रेष्ठ है और योगियों के मुक्ति का कारण है, फिर यह योग अत्यन्त हित का देनेवाला है, तथा योगियों को सब प्रकार सिद्धि दायक है ॥

इसी योग के प्रसाद से बिन्दु की सिद्धि हो जाती है अर्थात् इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर रक्षित कामदेव किसी प्रकार बूढ़ों के द्वारा नहीं कर सकता (रक्षित कामदेव भी मृत्त के संग, या स्वप्नादि दाय से कभी कर जाता है वह इसके अभ्यास से बँचा रहता है) जब इस प्रकार के महा यत्न से बिन्दु सिद्ध हो जाता है अर्थात् शरीर में कामदेव बँध जाता है तब भूतल में कौनसी बात है तो सिद्ध न हो जावे ? अर्थात् सब सिद्धि प्राप्त हो सकती है क्योंकि कामदेव ही शरीर का राजा है । जब शरीर में कान्ति आ जावेगी तब उसको देख कर लोगो का चित्त

आकर्षित होगा, स्नेह के स्थान पर स्नेह, भय के स्थान पर भय, मनोरथ के स्थान पर मनोरथ सिद्धि जान कर लोग वशीभूत हो जायेंगे ॥

समस्त बड़े २ भोगों से युक्त पुरुष भी यदि इस मुद्रा का अभ्यास करे तो सब प्रकार की सिद्धियाँ नियंत्रण करके उसको प्राप्त होती हैं । अर्थात् धनधान्य कुटुम्बादि जाना बिगड़ रहते महात्मापन उसमें नहीं आ सक्ता, वह भी बहुत भी धातों की आकांक्षा से महा दरिद्र साधु सन्त फकीर वगैरा के मुँह की ओर ताकता है, सो इसके साधन से वह बात न होकर इच्छा की ओर भी बड़े २ विषय धारी ताकता करेंगे ॥

शक्तिचालनी मुद्रा ।

मूलाधारेष्वात्मशक्तिः कण्डलीपरदेवता ।

शयिताभुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥४६॥

यावत्सानिद्रितादेहे तान्नज्जीवःपशुर्यथा ।

ज्ञानंनजायतेतावत् कोटियोगंसमंभ्यसेत् ॥४७॥

मूलाधार में आत्म शक्ति (परमात्मा की ताकत) सब से परे देवता कुरहलिनी (जिसका बयान वीछे कर भाये है) चर्च की तरह साढ़े तीन कदम की गुंथरी बांधे हो रही है ॥

जब तक वह देह में बसी रहती है तब तक जीव पशु की तरह अज्ञान बना रहता है, मत् अमत् कुछ भी नहीं जान पड़ता । तब तक चाहे कोटि प्रकार योगाभ्यास करो कभी सच्चा ज्ञान नहीं होगा । अर्थात् जैसे पशु भी घासछोड़ ककड़ परतार के न खानेमें विचार रहनाही वही पर इतनाही मात्र रहता है, किंतु उसके ऊपर ४ गण योगिनी पद ३ गण बाद देता तो पहिले वह उसके मातुल नहीं पड़ेगा कि यह योगी नेरी

पीठ पर आने से कष्ट दायक होगा इससे लादनेवाले को दूसरो से रोक
 मके बलि लाद देने पर अन्न नहीं चल सकैगा तब बैठ जावेगा, भार
 लायगा, नाना प्रकार की दुर्दशा भोगैगा । उधर लादनेवाला भी बिना
 उसकी गुरुभार की वेदना जान उसके गरिबार समस्त के भारते २ एक
 बार ऐसा नारा कि वह पशु भर गया, अन्तमें उधर पशु अपनी अज्ञानता
 से दुःख पाय प्राण त्याग किया । उधर वह लादने वाला मनुष्य भी अ-
 पने काम कारी पशु से हाथ चेर बैठा, निगकी हानि किया और ऊपर
 से पशु हत्या का नापी हो लोकमें निन्दित हुआ इत्यादि रीतिसे दोनों
 अर्थात् पशु और मनुष्य दरादर सामंदादे ठहरे विचार शक्ति किसी में
 नहीं आई । यह सब भिन्न एक जग तक कुण्डलिनी शक्ति होती रहती है
 कभी नहीं होता, यदि वह जग रहती है तो चहे योगाभ्यास करे चहे
 नहीं, चहे कर दिखाने की शक्ति रहे चहे नहीं, पर यह सत् यह असत्
 ऐसा विज्ञान तो उसके बुद्ध में अवश्य निरन्तर प्रवर्तित रहता है ॥

उदघाटयेत्कपाटश्रुयथा कुञ्जिकयाहठात् ।

कुण्डलिन्याप्रयोधेन ब्रह्मद्वारं प्रबोध्यते ॥४८॥

इसी निमित्त कहा है कि जैसे ताले से मज्ज, किमर को कुञ्जी से
 घट पट चघारके भीतर पैठा जाताहै इसी प्रकार कुण्डलिनीके जानने पर
 ब्रह्म द्वार अर्थात् सत्तिष्क (मयज) प्रभेद किया जा सका है अर्थात् वि-
 लम्ब किया जा सका है कि जिसे सत् असत् का ज्ञान हो जावे ॥ ,

शक्तिचालिनी मद्रा की विधि ।

नाभिंसंवेष्टप्रत्येण नचनग्नावहिस्थितः ।

गोपनीयगृहेस्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥४९॥

एक मन्त्र के द्वारा नाभि देग को संवेष्टके किसी गुप्त गृह में बैठकर

शक्ति चालनी मुद्रा का अभ्यास करे, किन्तु नग्न होके वहिर्भाग में इस योग का साधन करना उचित नहीं है । अर्थात् यह योग नग्न हो के गुप्त स्थान में करना चाहिये ॥

वितस्तिप्रमितंदीर्घं विस्तारेचतुरंगुलं ।

मृदुलंधवलंसूक्ष्मं वेष्टनाभ्यरलक्षणां ॥५०॥

एवमभ्यरयुक्तञ्च कटिसूत्रेणयोजयेत् ।

एक बिलस लम्बी और चार अंगुल चौड़ा कोमल और महीन सुफेद वस्त्र से नाभि को वेष्टन करे (नपेटें) और फिर वही वस्त्र को कटि सूत्र (करणी) से बांधे ॥

भस्मनागात्रसंलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत् ।

नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥५१॥

तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया ।

यावद्गच्छेत्सुपुन्नायां वायुः प्रकाशयेद्घठात् ॥५२॥

भस्म (राख) से शरीर को लेपन करे और सिद्धासन बांध कर बैठे, फिर नासिका के दोनों छेदों से प्राण वायु को खींच के घल के सहित अपान वायु के साथ मिलाय दे, जब तक वायु सुपुन्ना नाड़ी के भीतर जाके प्रकाशित न हो तब तक अश्विनी मुद्रा के द्वारा पीरे २ गुह्य प्रदेश को सिकाड़े ॥

तदावायुप्रयन्धेन कुम्भिकाचक्षुजङ्घिनी ।

यद्धश्वासस्ततोऽनूत्वा ऊर्ध्वमार्गं प्रपद्यते ॥५३॥

इसी प्रकार निश्वास को रोक के कुम्भक प्राणायाम धारण करे, तो

मुञ्जकाकार कुण्डलिनी शक्ति जाग के ऊपर की ओर उठती है । अर्थात् सहस्र दल कमल में परमात्मा के सहित मिल जाती है ॥

विनाशक्ते श्वालेनेन योनिमुद्रा न सिद्धयति ।

आदौचालनमस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥५४॥

बिना शक्ति चालिनी मुद्रा के अभ्यास किये योनि मुद्रा कभी सिद्ध नहीं हो सकती इससे प्रथम इस शक्ति चालिनी मुद्रा का अभ्यास कर ले तब योनि मुद्रा अभ्यास करे ॥

इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम् ।

गोपनीयं प्रयत्नेन दिनेदिने समभ्यसेत् ॥५५॥

चैरव नहाराण कहतेहैं कि हे चण्डकापालि । तुम्हारे सिकट यह मुद्रा मैंने कही जिमका नाम शक्तिचालिनी है, यह मुद्रा जब से दिन २ अभ्यास करना चाहिये और वह अभ्यास करना गुप्त भाव से रहे सहसा प्रसिद्ध न होने पाये ॥

शक्तिचालिनीमुद्रा का फल ।

मुद्रेयं परमागोप्या जरामरण नाशिनी ।

तस्मादभ्यसनंकुर्यादोगिभिःसिद्धिकांक्षिभिः ॥५६॥

यह मुद्रा परम गोप्य है (इसकी क्रिया गुप्त करनी चाहिये) इससे द्वाप युद्धाहं और मृत्यु दोनों नष्ट हो जाती है, इसीसे सिद्धि के चाहने वाले योगियों को इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये ।

नित्यं योभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिताः ।

तस्मै विद्महे सिद्धिस्त्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥५७॥

जो योगी इस मुद्रा को प्रतिदिन अभ्यास करता है उसके हाथ में सिद्धि आ जाती है अर्थात् वह पूरा सिद्ध हो जाता है, और उसी को विग्रह सिद्धि होती है (विग्रह सिद्धि वह है जिसमें विशेष ग्रहण की शक्ति होती है अर्थात् कोई कार्य करे अटपट पूरा हो जायगा) और उसके रोगाशु निवृत्त हो जाते हैं ॥

तड़ागी मुद्रा ।

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तड़ागाकृतिः ।

तड़ागीसा परामुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥५८॥

पश्चिमोत्तान अर्थात् उत्तान होकर पड़े और पेट को तड़ाग (तलाम) की तरह गहिरा करे और कुंभक प्राणायाम करे इसी को तड़ागी मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा एक प्रधान गिनी जाती है, इसके द्वारा बुढ़ाई और मृत्यु जाती जा सकती है ॥

मांडूकी मुद्रा ।

मुखं तृमुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत् ।

शनैर्ग्रसदेमृतं तन्मांडूकी मुद्रिकां विदुः ॥५९॥

• मुँह को तृमुद्रित और जिह्वा के मूल को तलुवे के ऊपर की ओर जलाये और धीरे २ सप्ताह दल कभल निरंतर अभ्यस पात्र करे । इसी को मांडूकी मुद्रा कहते हैं ॥

मांडूकीमुद्रा का फल ।

यदितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम् ।

नकेशी जायते पाको यः कुर्यादित्यमांडूकी ॥६०॥

भाङ्गुशी मुद्रा का नित्य अभ्यास जो कोई करे उसके शरीर में वलित (बमड़े की निकुड़न) पलित (भाँच गलेकर हड्डो काँच का रहना) ये दो शरीर के शिथिल करनेवाले आयु के नाशक भागन नहीं आ सकते और तिरहड़ी सुभावस्था भी घनी रहती है, तथा शिर के बान भी नहीं चलते ॥

शांभवी मुद्रा ।

नेत्रांजनं समांलोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत् ।

सामवेच्छां भवीमुद्रा सर्वतंत्रेणुगोपिता ॥६१॥

देनों भाँड़ों के बीच में जा देनों भाँड़ों को ही स्थिर दृष्टि से जब लोका न करके और मन को एक रस करके वही आत्मा राम (परमात्मा) को देखे (नानों सच्चिदानन्द वही घेठे हैं) इसी को शांभवी मुद्रा कहते हैं, यह सब तन्त्रों में गुप्त मानी गई है ॥

शांभवी मुद्रा का फल

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका ईव ।

इयन्तु शांभवीमुद्रा गुप्ताकुलवधूरिव ॥६२॥

४ वेद, ६ शास्त्र (व्यायादि तथा धर्मशास्त्र) १८ पुराण ये सब जैसे गणिका (घेरपा) लोग सब जगह प्रसिद्ध रहती हैं, किसी से गुप्त नहीं रहती वैसेही सामान्य वस्तु हैं, परन्तु यह शांभवी मुद्रा जैसे कुलवधू वही सब से सहस्र किशो की दृष्टि में नहीं पड़ती वैसे ही जानिये ॥

स एव प्रादिनाथश्च सचनारायणः स्वयं ।

सचब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शांभवी ॥६३॥

जो मनुष्य इस शंभवी मुद्रा को जानता है वह आदिनाथ (सबका प्रपम स्वामी) है वही नारायण (जीव समूह की शक्ति) है, और वही जग रचने वाला ब्रह्मा भी है ॥

सत्यं सत्यं पुनस्तत्यं सत्यमूचेमहेश्वरः ।

शंभवांयोविजानीयात् सचब्रह्मनचान्यथा ॥६१॥

जो मनुष्य इस शंभवी मुद्रा को जानता है वही भूर्तिनाम ब्रह्म है, इस बात को महादेव जी, यौन दार (त्रिधाया) करके सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

पंचधारणा मुद्रा ।

कथिताशंभवोमुद्रा शृणुष्वपंचधारणां ।

धारणानिसमासाद्य किंनसिद्धुतिभूतले ॥६५॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं शंभवी मुद्रा तो कह जाये जय है यह-कापालि ! तुम पञ्चधारणा मुद्रा सुने। यह पञ्चधारणा मुद्रा भी पांच प्रकार की है जिन पांचोके प्राप्त होने पर फिर भूतलमें कौन ऐसी बात है जो सिद्ध न हो ? अर्थात् सब कुछ सिद्ध हो जाता है ॥

छनेननरदेहेन स्वर्गपुगमनागमम् ।

मनोगतिर्भवेत्तस्यं सेचरत्नंचान्यथा ॥६६॥

ये पांच प्रकार की धारणा मुद्रा सिद्ध होने पर इन्हीं मरदेहमें (बिना मरे; जीते जी) स्वर्गलोक में जाना जाता हो सकता है, और उन पापम करनेवाली की मनोगति (जहाँ कहा जहाँ जाय) हो जाती है, तथा घेरण्ड (नाकाश में रहने की शक्ति) प्राप्त हो जाती है (पांच प्रकार

की धारणा पहिले कह जाये हैं, जैसे—पार्थिवी १, आग्नेयी २, वायवी ३, मानेयी ४, आकाशी ५,)

पार्थिवीधारणा मुद्रा ।

यस्तत्त्वंहरितालदेशरचितं मौमंलकारान्वितं ।

वेशास्त्रंकमलासनेनसहितं कृत्वाहृदिस्थापितं ॥

प्राणांस्तत्रयिनीयपंचघटिकां चिंतान्वितांधारये ।

देपाशाम्भकरीभवेत्क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ॥६७॥

पृथिवी शब्द का अर्थ हरिताल के समान पीला है, इस पृथिवीतल का बीज लकार है, इसका आकार बीकानेर बरबर है, अर्थात् इसके दे-
वता हैं, योग के प्रभाव से सब सब वस्तुओं के संहित रूप में, ध्यान
कर स्थायी करे, सभी समय में प्राणवायु को आकर्षण करके कुंभक के
द्वारा पांच घटी (दो घंटे) चित्त न हलने वाले धारण किये रहे, इसी
संभकरी (श्याम उहरानेवाली) क्रिया को पार्थिवी धारणा कहते हैं,
इसका दूसरा नाम अधोधारणा भी है, इसके धारण करनेसे अर्थात् म-
न्य करने से पृथिवी जीती जा सकती है, अर्थात् पृथिवी सम्यग्भी कोई
भी बाधा हो तो इसके धारक को कुछ भी बिगड़ नहीं कर सकती ॥

पार्थिवीधारणामुद्रा का फल ।

पार्थिवीधारणामुद्रा यःकरोतीनित्यशः ।

मृत्युंजयःस्वयंसापि ससिंहोविचरेद्भुवि ॥६८॥

• जो मनुष्य प्रतिदिन (रोज़ रोज़) इस पार्थिवीधारणा मुद्रा को करता
है वही निज मृत्युञ्जय हो जाता है, अर्थात् कभी नहीं मरता, और वही
सिंह हो के पृथिवी में विचरण करता है ॥

आम्भसीधारणमुद्रा ।

शंखेन्दुप्रतिमञ्जुकुन्दधवलं तत्त्वंकिलालंशुभ ।

तत्प्रीयूपवहारवीजसहितं युक्तंसदाविष्णुना ॥

प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितोधारये ।

देपादुःसहतापपापहरिणी स्यादाम्भसीधारणा ॥६९॥

जगत्त्व का यणं शर तथा चन्द्रमा की तुल्य विमल और कुन्द पुरप की तरह मज्जन है, और शोभन है, इसकी असूत सदा है और प्रकार इसका बीज है, और विष्णु इसके देयता हैं, योग के प्रभाव से हृदय के शीघ्र उक्त जल तत्त्व के समुदाय का ध्यान करे और उसी समय प्राणवायु को रोक कर पाच घड़ी चित्त स्थिर करके कुम्भक प्राणायाम में स्थिर रहे, इसीको आम्भसी धारण मुद्रा कहते हैं, यही मुद्रा बड़े २ दुग्ध साधों के तथा पापी को नाश करती है ॥

आम्भसीमुद्रा का फल ।

आम्भसीपरमामुद्रां योजानातिमयोगचित् ।

जलेचगंभीरेघोरे मरणांतस्यनोभवेत् ॥७०॥

* जो साधक इन आम्भसी मुद्रा का जानता है वही योगचित् (योग का जाननेवाला) है, यह यदि महा भयानक और गभीर (गहिर) जल में भी पड़ जाये तो उसका मरण नहीं हो सकता, अर्थात् श्याम साधन के प्रभाव से वह डूब नहीं रहता ॥

दृयंतुपरमामुद्रा गोपनीयाप्रयत्नतः ।

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं त्रिचमिचतत्त्वत ॥७१॥

यही आभवी मुद्रा परम ओष्ठ है और यह यज्ञ के महित गुप्त करने योग्य है, इसके प्रकाश से सिद्धि की हानि होती है, चैरखंडजी कहते हैं यह में खूब विचार करके सत्य कहता हूँ ॥

सात्पर्य यह कि यदि इसको करनेवाला सब जगह नही कि हन इस प्रकार की क्रिया करति है तो बहुत से लोग इस के करने की अभिलाषा करके उसके पास आयेगे जिसे उसके वित्त की पुकायता में विग्रह हलिंगे इससे गुप्त रीति से साधन करने पर कोई भी बाधा नहीं पहुँच सकती और क्रम से अष्टासय्य हो जावेगा, परन्तु जो नितास्त हूँ हो इस को सीखा चाहे उसके लिये गुप्त नहीं हो सकती, यही सात्पर्य चैरखंड महा-राम का है ॥

आग्नेयी मुद्रा ।

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं, योजंत्रिकोणान्वितम् ।

तत्स्वतेज मयं प्रदीप्तं मरुतं, रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ॥

प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां, चिह्नान्वितं धारये ।

देवाकाल भगोरभीति हरिणी, वैश्वानरीधारणा ॥७२॥

अग्नि तत्त्व का स्थान नाभी स्थित है, इसका मयं इन्द्रगोप कीट (बोरबहूटी) की तरह लगन है, रकार इसका बीज है, इसका आकार त्रिकोण और रुद्र इसके देवता हैं, यह तत्त्व तेज का मुद्रा है यह दीप्त-याम (प्रकाश करने वाला) और सिद्धि दायक है, योग चल से इस अग्नि तत्त्व को उदय कराय के पुकाय वित्त हो पांच घटी तक कुम्भक प्राणायाम से प्राण वायु को धारण करे । इसीका नाम आग्नेयीधारणा मुद्रा है; इसके अभ्यास करने से संसार का भय दूर हो जाता है, और अग्नि के द्वारा साधन की मृत्यु कभी नहीं हो सकती ॥

आग्नेयी धारणा मुद्रा का फल ।

प्रदीप्ते ज्वलितेऽन्यौ पतितौ यदि साधकः ।

एतन्मुद्रा प्रसादेन सजीवति न मृत्युभाक् ॥७३॥

यदि साधक सूख भरती हुई चकचकाती आग में पड़ जावे तोभी इस आग्नेयी धारणा मुद्रा के प्रसाद से जीता रहेगा, कभी मृत्यु का भागी नहीं होगा ।

वायवी धारणा मुद्रा ।

यद्विन्नांजनपुंज सन्निभमिदं, धूम्रावभासं परम् ।

तत्त्वं सत्यमयं यकारमहितं, यत्रेश्वरी देवता ॥

प्राणांस्तत्रयिनीयपंचघटिकां चिन्तान्वितां धारये ।

देवास्वेगमनंकरोतियमिनां, स्याद्वायवी धारणा ॥७४॥

वायु तत्त्व का वर्ण घिसा हुआ अङ्गुल (मुन्ना) तथा धुँवें की तरह है, यकार इसका बीज है और ईश्वर इसके देवता हैं, यह तत्त्व सत्य-गुण नय है, योग के प्रभाव में इस वायु तत्त्व को उदित कराएके पृष्ठा पर बिना हो पाए वायु को आकर्षण कर कुम्भक प्राणायाम के द्वार पाँच घड़ी धारण की, इसी का नाम वायवी मुद्रा है, यह मुद्रा साधन करने वालेके वायु में कभी मृत्यु नहीं हो सकती, और साधक की शक्ति आकाश ज्ञान ज्ञान की भी हो जाती है ।

वायवी धारणा मुद्रा का फल ।

इयत्तु परमा मुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ।

प्रायुनाम्रियते नापि से च गति प्रदायिनी ॥७५॥

यह मुद्रा परम अष्ट जरा (बुढ़ाई) और मरण इन दोनों को नष्ट कर डालती है और साधक वायु के किसी प्रकार के कोप से नहीं सर सकता, और यह मुद्रा आकाश गगन की शक्ति को भी देनेवाली है ॥

सठायभक्तिहोनाय नदेयायस्यकस्यचित् ।

दत्तेचसिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मिचण्डते ॥७६॥

चैरह जी कहते हैं कि हे चण्डकापालि ! इस मुद्रा की विधि सठ (जो लोगों को ठगने के लिये चाहै) को और भक्ति हीन (जो चाहै कि सिर्फ ज्ञान कर आचरण न करें, लोगों को धोखा दे सिद्धाई फेलावे) को कभी नहीं बताया चाहिये, और भी जिस तिल को कभी नहीं देना चाहिये, यदि दे तो देने वाले की सिद्धि में हानि होती है, अर्थात् उन सठ आदि की कलाई खुलने पर यथावे सिद्ध को भी लोग सठ आदि समझ कर धोखा डाला करते हैं, चैरह जी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम यह तुम से सत्य कहते हैं ॥

अकाशी धारण मुद्रा ।

यत्सिन्धुधरशुद्धवारिसदृशं व्योमंपरं मासितं ।

तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितं ॥

प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितां धारये, ।

देपामोक्षकपाटमेदनकरी कुर्यान्नमोधारणा ॥७७॥

आकाशतत्त्व का वर्ण समुद्र के विशुद्ध जल की तरह प्रकाशित होता है, सदाशिव इसके देवता हैं, हकार इसका बीज है, इसी आकाश तत्त्व को सदाशिव के सहित योग प्रभाव से उदित कर एकाग्र मन हो ध्यान करे और उसी समय प्राण वायु को खींच कर कुम्भक प्राणायाम से पाँच

यही धारण किया है, इसी को आकाशी धारण कहते हैं, यह मुद्रा मांस के कियारों को खोल देती है, अर्थात् साधक शीघ्र मुक्ति हो जाता है ॥

आकाशी धारण मुद्रा का फल ।

आकाशी धारणां मुद्रां यो वेत्ति सैव योगवित् ।

न मृत्युं जीयते तस्य प्रलयेनावसीदति ॥७८॥

जो मनुष्य आकाशी मुद्रा को जानता है यही निश्चय योग का जाननेवाला है, उसकी मृत्यु भी किसी से नहीं होती और वह प्रलय होने पर भी त्यों का त्यों बना रहता है ॥

ये पंच धारण मुद्रा समाप्त हुईं ।

अश्विनी मुद्रा ।

आकुंचयेद्गुद्वारं प्रकाशयेत्पुनःपुनः ।

सामवेदश्विनीमुद्रां शक्तिप्रबोधकारिणी ॥७९॥

साधक फिर २ अपने गुह्य द्वार को सिकोड़े और फैलाये इसी का नाम अश्विनी मुद्रा है, यह मुद्रा शक्ति (ताकत) को जगाने वाली है ॥

अश्विनी मुद्रा का फल ।

अश्विनीपरमामुद्रां गुह्यरोगविनाशिनी ।

बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥८०॥

यह अष्ट अश्विनी मुद्रा मुद्रा के जितने रोग हैं सबको मल्ट करती यन और पुष्टि का बढ़ाती और अकाल मृत्यु को भी हर लेती है ॥

पाणिनी मुद्रा ।

कण्ठे रुण्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवं दृढं ग्रन्थने ।

साएव पाणिनीमुद्रा शक्तिप्रवोध कारिणी ॥८१॥

होना पाश गण्ड (गण्डन) की पीठमें दान कर लैसे पाश (रस्ते) से बाधा जाता है ऐनाही दृढ़ (मजबूती से) बाधे, यही पाणिनी मुद्रा यही जाती है, यह भी शक्ति (साक्त) जगाने वाली है ॥

पाणिनी मुद्रा का फल ।

पाणिनी महतीमुद्रा श्रुत पुष्टि विधागिनी ।

साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥८२॥

यह पाणिनी एक बड़ी भारी मुद्रा है, यह बल और पुष्टि दोनोंको बढ़ानेवाली है, सिद्धि के चाहनेवाले साधक लोग इसका अवश्य इसे धन से साधन करें ॥

काकी मुद्रा ।

काक चंचुवदास्थेन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।

काकी मुद्रा भवेत्तदा रुचि रोग विनाशिनी ॥८३॥

जबने मुख को पीछे की ओर की तरफ लगाकर धीरे २ वायु पान करे इसी का नाम काकी मुद्रा है । यह सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥

- काकीमुद्रा पशुमुद्रा एवं तन्त्रेषु गोपिता ।

अस्या प्रसादमात्रेण काकवल्लीरोगो भवेत् ॥८४॥

यह काकी मुद्रा बहुत उत्तम है और सब तन्त्रों में गोपनीय है, इस के प्रसाद मात्र से मनुष्य काक की तरह रोग रहित हो जाता है ॥

मातङ्गिनी मुद्रा ।

कण्ठमग्नेजलेस्थित्वा नासाभ्यांजलमाहरेत् ।

मुखान्निगमयेत्पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥८४॥

नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्याद्वेवं पुनः पुनः ।

मातङ्गिनी परामुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ॥८५॥

गला पर्यन्त जल में लंबाई हो कर पहिले नाक से जल को खींचके मुख से गिराये दे, फिर मुख से भी जल को खींच के पीछे नाक के दोनो छेदों से बहाय दे, इसी प्रकार बार २ खींचे और फेंके, इसी का नाम मातङ्गिनी मुद्रा है । यह मुद्रा जरा (बुढ़ाई) और मृत्यु को नष्ट कर दालती है ॥

मातङ्गिनी मुद्रा का फल ।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ।

कुर्यान्मातङ्गिनी मुद्रां मातङ्ग इव जायते ॥८६॥

साधक निर्जन स्थानमें स्थित हो एकाग्र चित्त करके इस मातङ्गिनी मुद्रा को साधे तो मातङ्ग (हाथी) की तरह बली हो जावे ॥

यत्रयत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्त मश्नुते ।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां परां ॥८७॥

इस मुद्रा के साधन करनेवाला योगी कहा जहाँ स्थित रहेगा, वहाँ

वही अत्यन्त मुख का भोगी होगा, इस लिये सब तरह से प्रयत्न करके इस घेष्ट मुद्रा का साधन करना चाहिये ॥

भुजंगिनी मुद्रा ।

यक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्य चानिलंगलयोपिवेदन
सामवेदुजगीमुद्रा जरासृत्पुत्रिनां शिती तादृशा

मुद्रा को, किञ्चित् (थोड़ा सा), फैलाप के गटे के द्वारा आधु पान करी (गुला में आधु का चक्का जोर से लगी) इसी प्रकार भुजंगिनी मुद्रा कहते हैं । यह जरा (मुद्रा) को नष्ट करती है ॥ १९॥ -

भुजंगिनी मुद्रा का फल ।

यावच्च उदरे रोग मोजीर्णादिविशेषतः ॥ १९ ॥

तत्सर्वनाशयेदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी ॥ १९ ॥ -

" उदर (पेट) में तितने रोग हों, विशेषकर अजीर्ण हो तो इस सर्पों को बहुत जल्द यह भुजंगिनी मुद्रा मष्ट कर डालती है । तात्पर्य यह कि जहाँ कहीं ऐसा बीका आगूदे कि कोई दवा नहीं, कोई घेष्ट नहीं, या किसी प्रकार की लजला नहीं कि पेट को पीड़ा आदि रोग जट्ट हों और दुःख कहा पांरी हो रहा है वहाँ इस मुद्रा के करने से अवश्य तुरंत सब रोग मष्ट हो जाते हैं, यह मुद्रा बहुत महज है, जिसने अभी जैयोंन भी नहीं किया यह भी वायधाम हो के करे तो कायदा बहुत मरता है ॥

अथ समस्त मुद्राओं का फल कहते हैं ।

इदं नु मुद्रापटलं कंपितचंडकपाले ।

यत्प्रमसंधसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥ १० ॥

घेरण्ड मुनि जी कहते हैं कि हे चण्डकपालि ! मैंने तुम्हारे निकट यह मुद्रा पटल (मुद्राओं की गिनती और विधि आदि) कहा यह पटल समस्त सिद्धों का प्रिय है और जरामरण को नष्ट करनेवाला है ॥

सठांयभक्तिहीनाश्च नदेयंयस्यकस्यचित् ।

गोपनीयंप्रयत्नेन दुर्लभंमरुतामपि ॥११॥

जो सठ है और भक्तिहीन है उसको ये सब मुद्रा कभी नहीं देना चाहिये, और जिस जिस को भी देना उचित नहीं है इसको यत्र से गुप्त रखना चाहिये, ये सब मुद्रा देयता को भी दुर्लभ हैं ॥

ऋजुवैशांतचित्तायं गुरुभक्तिपरायच ।

कुलीनायप्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥१२॥

ये गर्व मुद्रा भोग और मुक्ति दोनों देनेवाली हैं इससे ऐसे विचार से लोगों को घताना चाहिये जोकि ऋजु (कोमल शुभाश) हों, जो शांत चित्त (चक्षुणता, रणित) हो जो गुरु भक्ति पर (उपदेष्टा के वचन को मानने वाले) हों, और जो कुलीन (जिसको अपने नामी पुरुषों की बदनामी के हरसे उनकी उत्तम लीक पर चले जाने में दृढ़ता हो) वहाँ को देना चाहिये । तात्पर्य यह कि कोमल चित्त नहीं है और सिद्ध हो गया तो सिवाय ससार को कष्ट देने के और कुछ भी भक्षण कार्य नहीं करेगा यदि चक्षुण हुआ तो उसको इन आसन मुद्रादि से सिद्धि नहीं प्राप्त होगी, यदि उपदेष्टा के वचन को न मानने वाला हुआ तो भी क्रिया, सटपटाग करने से कुछ भी सिद्ध हासिल नहीं होगी, और यदि अपने नामी पुरुषों की बदनामी को नहीं हरैगा तो वह अनेक भयानक अपराधकार करके अपनाही प्रयोग देरगा ऐसे २ लोगों को इस योग विद्या का घत ना उराटा फलदायक होता है अर्थात् भोग वस्तु की

क्रिया तो ग्रहण करने परन्तु मुक्ति जो परम पुनर्प्राप्ति है उसको नहीं प्राप्त
कर सकेंगे, इसी निमित्त मन्त्र जगह "नदातव्य नदातव्य" कहा है ॥

मुद्राणां पटलं ह्येतत्सर्वं व्याधि विनाशनम् ।

नित्यमभ्यास शीलस्य, जटराग्निविघ्ननम् ॥९३॥

यह मुद्रा पटल सब व्याधि को नष्ट करनेवाला है, और जो नित्य
अभ्यास करता है उसके जठर की अग्नि बूझ जाती है ॥

तस्य नोजायते मृत्युर्नास्य जरादिकं तथा ।

नाग्निजल भयं तस्य वायोरपि कुतो भयम् ॥९४॥

जो मनुष्य मुद्रा साधन करते हैं उनको न मृत्यु न बुढ़ाई, आदि, न
आग, न पानी, न वायु यह सब भय नहीं भय पड़नाय सके हैं ॥

कासः श्वासः प्रीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्च विंशतिः ।

मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यन्ति न संशयः ॥९५॥

मुद्रा साधन करने से, काम (खांसी) श्वास (दहा) प्रीह (विलह)
कुष्ठ (कोढ़) तथा बीज प्रकारके श्लेष्मा (कफ) रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

यदुनाकिमि हांक्तेन सारं यच्चि च चण्डते ।

नास्ति मुद्रासमं किञ्चित् सिद्धिदं क्षितिमण्डले ॥९६॥

चिरगड महागुह्य कहते हैं, हे चण्डकपालि ! तुम्हारे निकट बहुत
कहने से क्या है, किन्तु सार यान में जड़ता है कि इस मूलमन्त्र में मुद्रा
के समान कोई भी वस्तु सिद्ध देने वाली नहीं है ॥

इति चिरगडसंहितायां चिरगड चण्डकपालि सम्बन्धे चटस्योप
प्रकाश मुद्रा प्रयोगानाम् तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोपदेशः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकं मुत्तमम् ।

यस्याविज्ञानमात्रेण कामादि रिपुनाशनम् ॥१॥

यह प्रमाण कहते हैं कि हे प्रवक्ष्यामि । मुत्तम कथनके अनन्तर
अथ इन तुमसे प्रत्याहार कृतम योग कहते हैं, इसके विशेष ज्ञान मात्र
से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य ये छः रिपु जो प्राणियोंको इस
संसार में बँधे रक्ते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं ॥१॥

अतस्ततो नियम्येत दात्मन्येव यश्चिन्तयेत् ॥२॥

जिस विषय में चित्त प्रवृत्त हो के चर्चन करे, प्रत्याहार के द्वारा
यस विषय से मन को निवृत्त (छीटा) करके अपने यश में लाना
चाहिये ॥२॥

पुरष्कारं तिरष्कारं सुश्राव्यं भावंमायकम् ।

मनस्तस्मान्नियम्येत दात्मन्येव यश्चिन्तयेत् ॥३॥

यह पुरष्कार (नादर) है यह तिरष्कार (निरादर) है किसी
में मनको किसी नहीं कौनसा चाहिये, इसी प्रकार यह सुश्राव्य (कानको
अति प्रिय शब्द) है, यह अश्राव्य (कानको अप्रिय) है, किसी
में मनको तब फँसावे, तात्पर्य यह, कि गीतादि सुन कर, वा स्तुति धाद
आदि सुनकर, यशस्व सुग हो, मन को भुलाय नहीं देना और न भयानक
चिन्तार तथा निन्दा, वाद आदि सुनकर प्रकल हो जाना, इस प्रत्या-
हार योग का इसी साधन है कि मन सबों से मन को निवृत्त करके
अपने यश में रखेगा, अर्थात् सुनना सब पर मन को एक रस स्थिर
रखना ॥३॥

सुगन्धोवापिदुर्गन्धो घ्राणेपुजायतेमनः ।

तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येववशंनयेत् ॥१॥

यह सुगन्ध है, यह दुर्गन्ध यदि घ्राण (बूँधने) में जाये और मन वार ९ चाहे तो मन को वहाँ से लौटार के अपने वश में करेगा ॥१॥

मधुरास्लक्तित्तादिरसगामियदीमनः ।

तस्मात्प्रत्याहरेदे दात्मन्येववशंनयेत् ॥५॥

यह मधुर (मीठा) है, यह मस (मिठा) है, यह विक्क (तीता) है, यह कपाय (काकस) है, यह कदु (कहुमा) है, यह लवण (लोना) है, यदि मन इन के रसों को ओर दीर्घ तो वधर से लौटार के मन को आत्मा से वश में लाते का अभ्यास करे वही का नाम प्रत्याहार है ॥५॥

इति श्री धिरगुहसंहितायां धिरगुहं चण्डकपांसि सिद्धिदं

प्रत्याहार प्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः समाप्तः ॥१॥

॥१॥

अथ पंचमोपदेशः ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि प्राणांयामस्ययद्विधिम् ।

यस्यसाधनमात्रेण देवतुल्योभवेत्तरः ॥१॥

ऐसह महाराज पंचकपांसि से कहते हैं कि इन प्रत्याहार कदु मस मधुर इवके अनन्तर प्राणायाम की विधि है उसे कहते हैं ॥ १ ॥ जिसके साधन करतेही मनुष्य देवता के समान हो जाता है ॥

आदौस्यानंतयाकालं मिताहारंतयापरम् ।

नादोशुद्धिचतत्पश्चात्प्राणायामं च साधयेत् ॥२॥

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन करने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर उसी प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद भिताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधको को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

स्थान निर्णय ।

दूरदेशे तथा राजधान्यां जनांतिके ।

योगारम्भनकुर्वीत कृतेन सिद्धिर्दोभवेत् ॥३॥

मनुष्य बस्ती से दूर, तथा जंगल में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जनों के समीप । इन स्थानों में योगारम्भ (प्राणायाम साधन) करनी नहीं करना चाहिये, करे तो सिद्धि कभी न हो ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरगये रक्षि वर्जितम् ।

लोकारगये प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि विवर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करे तो वहाँ किसी का विश्वास नहीं कि कौन योगी की ठीक रहता करेगा । यदि यहाँ में योगाभ्यास करे तो वहाँ भी कोई रक्षक नहीं मिल सकेगा यदि बहुत से मनुष्यों के बीच योग साधन करे तो सब प्रगट रहैगा जिस्से लोग देखन आया करेंगे और उसके मन स्थिर नहीं होन पायेगा । इसीलिये ये तीन अवश्य वर्जित हैं । राजधानी को विशेष वाजत इच्छित्य की क्षिया की वहाँ जहाँ तक बचाव सके बचावे परन्तु यदि राजधानी ही का रहने वाला मनुष्य योगाभ्यास करे तो वह कहा जा सता है ? क्योंकि यहाँ दूर देश भी वर्जित कर आये हैं इस राजधानी का मनुष्य यदि योगाभ्यास करे तो राजधानी विशेष वर्जित नहीं है । वर्जित करने का कारण यह है

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन करने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर सभी प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद सप्ताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधकों को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

। . स्थान निर्णय ।

दूरदेशे तथा रण्ये राजधान्यां जनांतिके ।

योगारंभनकुर्वीत कृतेन सिद्धिर्दोभवेत् ॥३॥

मनुष्य सुखी से दूर, तथा जैन-में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जगहों के समीप । इन स्थानों में योगारंभ (प्राणायाम साधन) नहीं करना चाहिये, करे तो सिद्धि नहीं मिले ॥

अविश्वामसूतूरदेशे अरण्ये रक्षिषर्जितम् ।

लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्प्रीतिविवर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करे तो वहाँ किसी का रि नहीं कि कौन योगी ही ठीक रक्षा करेगा । यदि वन में योग करे तो वहाँ भी कोई रक्षण नहीं मिलेगा । यदि बहुत में न भी योग साधन करे तो सब प्रगट रहेगा जिससे लोग देख करेंगे और उसके गन् स्थिर नहीं हो पायेगा । इसीलिये ये तीर्थ वर्जित हैं । राजधानी के विशेष, मार्जित इतिवृत्तों की किया गया सब बचाव सबके यथावे परन्तु यदि राजधानी की का र मनुष्य योगाभ्यास करे तो वह कदा का नष्ट है । क्योंकि वन भी वर्जित कर आये हैं, इस राजधानी का मनुष्य यदि योगा तो राजधानी विशेष वर्जित नहीं है । वर्जित करने का कारण

काल निर्णय ।

हेमन्तेशिशिरग्रीष्मे वर्षायांच ऋतौ तथा ।

योगारम्भं न कुर्वति कृते योगो हि रोगदः ॥८॥

हेमन्त ऋतु, शिशिर ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु, इनमें योगारम्भ कभी नहीं करना चाहिये, यदि करें तो वह योग रोग का देने वाला हो जायगा ॥

वसन्तेशरदिप्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत् ।

तथा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्भुवम् ॥९॥

वसन्त ऋतु और शरद ऋतु में योगारम्भ करनेको मुनियोंने लिखा है इसे एकादश ऋतुओं में योगारम्भ करना चाहिये, इनमें करने से योगी सिद्ध हो जाता है और रोगों से भी निश्चय मुक्त हो जाता है ॥

चैत्रादिफाल्गुणान्ते च माघादिफाल्गुणान्तिके ।

द्वौ द्वौ मासी ऋतुभोगौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥१०॥

चैत्र के महीना से लेकर फाल्गुण के अन्त तक छः ऋतु तथा माघ मास के आदि करके दूसरे वर्ष के फाल्गुण तक चौदा महीनेके भी छः ऋतु बांधी गई हैं । इस प्रकार दो २ मास की एक २ ऋतु—तथा दो मास और दश दिन की ऋतु अनुभव की जाती हैं ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठापादश्रवणी ।

वर्षाश्चावणमाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ॥११॥

वैत और वैशाख ये दो महीना वसन्त ऋतु कह्ये जाते हैं, जेठ और आषाढ़ ये ग्रीष्म ऋतु, सावन और माघ ये वर्षा, कुमार और कार्तिक

ये शरद ऋतु, अगहन और पूष ये हेमन्त, माघ और फागुन ये शिशिर ऋतु कहे जाते हैं ॥

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतुनाञ्चयथोदितं ।

माघादिमाघवान्तेषु वसन्तानुभवश्चतुः ॥१२॥

चैत्रादिचापाढान्तञ्च निदाद्यानुभवश्चतुः ।

आषाढादिचाश्विनान्तः प्राश्रपानुभवश्चतुः ॥१३॥

भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदोऽनुभवश्चतुः ।

कार्तिकादिमाघमांसान्तं हेमन्तानुभवश्चतुः ॥१४॥

मार्गादिचतुरोमासान् शिशिरानुभवश्चिदुः ।

चैरगु जी चरकपाणि से कहते हैं कि जिन २ महीनों में जो २ ऋतु अनुभव से जानी जाती हैं वानी जलकोसे मिलती हैं उनके कहते हैं, जैसे—माघ से वैशाख तक चार महीना वसन्त ऋतु अनुभव होती है, फिर उसी के भीतर और उसके बाहर जैसे चित से आषाढ़ पर्यन्त चार महीना ग्रीष्म ऋतु अनुभव होती है, इसी तरह आषाढ से ले कुमार पर्यन्त चार महीना वर्षा ऋतु अनुभव होती है, तथा भाद्रपदे लेकर अगहन पर्यन्त शरद ऋतु का अनुभव होता है, कार्तिक से लेकर माघ तक हेमन्त ऋतु का अनुभव होता है, अगहन से लेकर फागुन तक चारमहीना शीत ऋतु का अनुभव होता है; इसी प्रकार अनुभव की ऋतु जानना चाहिये, और उन्हीं के हिसाब से योगारम्भ करना उचित है ॥

वसन्तेवापिशरदि योगारम्भः समाचरेत् ।

तदायोगोभवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते ॥१५॥

मन्त्र प्रयोग शरीर वित्तु में योगारम्भ करे तो बिना परिश्रम योग सिद्ध हो जावेगा यह योगियों के द्वारा कहा गया है ॥

मिताहार ।

मिताहारं विना यस्तु यागो रम्भन्तु कारयेत् ।

नानारोगो भवेत्तस्य किञ्चिद्योगो न सिद्ध्यति ॥३६॥

जो मनुष्य मित प्रथात एक तेल कांच कर भोजन नहीं करता और योगारम्भ करता है, वह नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होता है और उसको कुछ भी योग विद्या का लाभ नहीं होता ॥

साध्यम्—भोजन की साधना प्रधान योग है, भोजनही से देह प्रति पालित होता है और भोजन की गड़बड़ी हुई तो बहुत जल्द मनुष्य मर भी जाता है, इसलिये घेयसंहिता में भोजन को सम भाव रखने के लिये इस मिताहार का प्रकाश उठाया है, जो शक्त योगाभ्यास किया चाहे वह तो मिताहार का साधना अवश्य करे परन्तु जो बिना योग कापेही अपने शरीर को निरोग रक्खा चाहें वे भी मिताहार करें तो पाचक योगियों से जल गुणा उत्तम रहेंगे, कोई शक्त प्रज्जमाय के देह से कि जो एक वर्ष मिताहार करता है उसके कोई व्याधि शरीर में आती है या नहीं हम दुर्गता से कहते हैं कि मिताहार की बराबर और कोई भी शरीर रत्न के लिये उपयोगी औषध नहीं है, जिसने मिताहार नहीं किया चाहे कोई औषध काय पर तादृश निरोगता नहीं होगी जिस कि मिताहार ने हो सकी है इसे आरोग्य चाहनेवाले पुरुष मिताहार अवश्य करें ॥

शाल्यन्नं यवपिंडं च गोधूमपिंडकंतया ।

मुद्गं मापचणकादि शुभ्रं च तूपवर्जितं ॥३७॥

जो कोई योग साधन किया चाहें वे श्यामी (ससम धान के) चावल
या यव पिष्ट (जव पिसान की रोटी वा सेतुआ) तथा गोधूँ की रोटी,
और मूँग अथवा नट्ट वा चना आदि की दाल, जो सूख साफ और भूरी
रहित भोजन करें ॥

पटोलंपनसंमानं कक्कोलंचशुकाशकं ।

व्राटिकांकर्कटीरम्भां दुम्बरीकंटकंटकं ॥१८॥

परचर, कटहर, मान (अरुहे की तरह बड़े पत्ते का होता है और
उसकी जड़ बड़े की तरह बड़ी लम्बी होती है) कक्कोल (करीला) बैर,
करज कँकरी, केला, गुनर, कँटीली चौराई आदि का राग, इत्यादि
बस्तु खावे ॥

आमरम्भां बालरम्भां रम्भादण्डंच मूलकम् ।

वार्ताकीं मूलकंजद्विं योगी भक्षण माचरेत् ॥१९॥

करवे केले की तरकारी, केले की दलिया (जो फूलों में लगी हो)
केला का दण्ड (बीज का नरम गव्बीका) केला की जड़, भाटा, मूली, इन
सब की तरकारी योगी खावे ॥

वाल शकं काल शकं तथा पटोल पत्रकम् ।

पञ्चशकं प्रशंसीयादास्तुकं हिलमोचिकां ॥२०॥

वाल शक अर्थात् कोमल कोई भी प्रचलित भाग हो, काल शक
अर्थात् जिस समय में जो भाग पुष्पा करता हो, पटोल पत्र अर्थात् पर-
चर की पत्ती का भाग (यह जाने-में कट्ट होता है परन्तु सब से ज्यादा
निरोग होता है और खाते २ अभ्यास करने पर अच्छा भी लगने लगता
२) पधुआ का भाग और हिंवा भाग ये पाक प्रकार के राग योगियों
के लिये परावर्णीय हैं ॥

सुदं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्द्धं विवर्जितम् ।

भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहार मिमंविदुः ॥२१॥

शुद्ध अर्थात् साफ, सुन्दर मधुर (जो खानेमें मिठाव) स्निग्ध (जिसमें तृष्ण न हो) सुरस (जिसका रस खराब न लगे) ऐसे भोजन को योगी लोग वही प्रीति से भोजन करें और वह भोजन आधा पेट खावे आधा आली रखे । वही को मिताहार कहते हैं ॥

तात्पर्य—आधा पेट खाने की विधि से बहुत से सरभुक्के योगी-प्राणी लोग यह सोचेंगे कि इन आधापेट खाकर कैसे बचेंगे ? उनको यह भीरज दिया जाता है कि जब शुद्ध, सुरस और स्निग्ध आदि पदार्थ मोति से खावेंगे और बिना आधाही पेट खावेंगे तो वह आसन प्राणा-पानादिक क्रियाओं से ऋतपट पचकर प्राण पोषण रस उत्पन्न करेंगे, वह रस जब नाड़ियों में दौड़ कर शरीर में व्याप्त हो जावेगा तो थोड़े ही देर के बाद सुन्तीप लाभ होगा । फिर ज्यों २ रोज २ इसी प्रकार आधे पेट खाने का अभ्यास दोगे । त्यों २ सुन्तीप भी बढ़ता जावेगा और उसका गुण भी बढ़ता जावेगा । यदि जब पूरा पेट खाकर जाता है तो वह आसन प्राणायाम आदि क्रियाओं के रगड़से अभ्यास को कष्ट पहुँचाता है और ऋतपट अभ्यास के भीचे पंच कर चैतन्य को राह से भूल हो कर निवृत्त जाता है वस्ते प्राणपोषक रस देना नहीं उत्पन्न होने पाता, वह वही मिताहार का अभ्यास है कि जो असादि आदि यह उन्नतता से पच जावे, वस्ते विकार रस पैदा न हो के शरीर को आरोग्य रखे ॥

अन्नेन पूरयेद्वर्द्धं तोये ननु तृतीयकम् ।

उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायु चारणे ॥२२॥

पेट का आधा भाग अन्न के भोजन से पूरा करना चाहिये, तीसरा

भाग जल पीकर पूरक करना चाहिये, इसी प्रकार उदर का भीया भाग वायु चलाने फिराने के लिये छोड़ रखना चाहिये ॥

कट्वम्ल लवणांतिकं भृष्टञ्च दधितक्रकम् ।
 शाकोत्कटं तथा मयं तालञ्च पनसन्तथा ॥२३॥
 कुलस्थं मसरं पाण्डुं, कुप्माडं शाकदण्डकम् ।
 तुम्बीकोलकापित्यञ्च, कंटविल्वंपलाशकम् ॥२४॥
 कदम्बं जम्बीरं विम्बं लक्ष्मं लशुनं विषम् ।
 कामरङ्गं पिथालञ्च हिङ्गुशालमलिके मुकम् ॥
 योगारम्भे वर्जयेत् पथस्त्री वन्दि सेवनम् ॥२५॥

कटु (कड़ू) अम्ल (खटाई) लवण (नोनखरा, नमकीन) तिक्त (तीता) ये चार प्रकार के रस युक्त पदार्थ योगारम्भ में छोड़ देना चाहिये, भृष्ट (भूजा खरीना) दही, मटर, घुण्टित या खराब शाग, सदिरा, ताड़ फल तथा उसका रस, पट्टा कटहर, कुलथ (कुरपी की दाल) समूर की दाल, पटोरा नामक फल, कुम्हड़ा, मथा दाटे या अरुई आदि के पुष्प, लीकी, घेर, कैया, जिस घेल में कांटा हों, पलाश, कदम्ब के फल, जम्बीरीनों, कुंदुक, लक्ष्म (लहसुन) मूखाल (कमल की हठी) कमरख, प्याज होंग, शेनर के फल, केमुच (गोभी) योगारम्भ काल में ये भी सब द्रव्य भोजन में वर्जित है, इसी प्रकार पथ का चलना, स्त्री प्रसङ्ग तथा भाग का तापना आदि भी वर्जित हैं ॥

सावधान्य यह है कि जब योगाभ्यास की क्रिया आरम्भ की जायगी तब यहीर को ये सब वस्तुये राग साध कर देंगे परन्तु जब योगाभ्यास की सामर्थ्य हो जायगी तोभी भिन्न हो जायगा तब तो कोई भी वस्तु भोजन पात्र करे उसके बिचार नहीं करेंगी, बल्कि हरएक वस्तु के साथ

तात्पर्य—यहां पर एक शंका यह होती है कि २६ श्लोक में नैनू घी दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर घी दूध रोज २ पहिले सेवन करके तब प्राणायाम करे । यह कैसे संभव हो सता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि वहां २६ श्लोक में योगारंभ के समय घी दूध को निषेध किया है, कुछ साधन हो जाते पर निषेध नहीं किया । परंतु यहां जो घी दूध की विधि है वह इस तात्पर्य से है कि जब साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति, जल जावे तब उसी के साथ २ घी दूध के सेवन का भी काम से अभ्यास करे परन्तु कम से कम आरंभ से एक पल या तो घण्टा की जब तक दूसरी प्रकृति न जावे तब तक उसी प्रकार जैसे कि २६ श्लोक में लिखा है साधन करे, बाद जब १ पल बीत जावे तब फिर क्रम से घी दूध सेवन करे, और वहाँ तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो । इस पूर्व निषेध और विधि संगत हो गये । इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जायें यहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत करलेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा सदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है । यदि विवेचना से चूका तो सब योग नहीं है जाता है, इसी विवेचना को रूप साधना चाहिये ॥

विचार करे कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखाया है कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये, परन्तु यह भी लिखा है कि समुद्र २ वस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करें, तो यहां पर यह विवेचना कानो जरूर है कि मन को निवृत्तिही प्रदान है क्योंकि जहां कहीं दीप प्रयोग से आवश्यककीय वस्तु न मिले वहां सब किया कराया नष्ट भया कि नहीं ? वहाँ स्थलों में प्रत्याहार काम से आते हैं कि आवश्यककीय

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युपितं तथा ।

अतिशीतंचातिचोद्यं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥२९॥

जो द्रव्य कठिनता युक्त हो, जिसके भोजन से पाप उत्पन्न हो, सब पच के दुर्गन्ध युक्त हुये हों, अधिक गरम हो, वा अधिक ठंडा हो, बानी हो, अति चप (अधिक तेजी लिये हो) ऐसे पदार्थों को योगी लोग कभी भोजन न करें ॥

प्रातःस्नानोपवासादि कायक्लेश विधिं विना ।

एकाहारं निराहारं, यमान्ते च नकारयेत् ॥३०॥

जब योगारम्भ करे तब प्रातःस्नान नहीं करना चाहिये । उपवासादि शरीर के क्लेश देने वाले कर्म नहीं करने चाहिये । एक ही बार भोजन करना यह भी नहीं करना चाहिये, या कुछ नहीं खाना यह भी नहीं करना चाहिये, और एक प्रहर तक निराहार रहना अधिक नहीं, तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त उत्तम पदार्थों में से कुछ थोड़ा अवश्य एक २ प्रहर बाद खा लिया करे ॥

एवंविधि विधानेन प्राणायामं समाचरेत् ।

भारंभं प्रयमेकुर्यात् क्षीराज्यं नित्यं भोजनम् ॥३१॥

मध्याह्ने चैव सायान्ते भोजनद्वयं समाचरेत् ॥

इसी प्रकार की विधि से प्राणायाम साधन करना चाहिये । प्राणायाम करने के पक्षिते रोज २ दूध और घी सेवन करना चाहिये । और मध्याह्न (दुपहरी) में तथा सायंकाल में इन्हीं दो समयों में योगी लोग भोजन करें ॥

तात्पर्य—यहां पर एक शंका यह होती है कि रई श्लोक में नैनू ची दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर ची दूध राज २ पहिले सेवन करके तब प्राणायाम करे । यह कैसे संकृत हो सता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि यहां रई श्लोक में योगारंभ के समय ची दूध का निषेध किया है, कुछ साधन हो जाने पर निषेध नहीं किया । परंतु यहां जो ची दूध की बिधि है वह इस तात्पर्य से है कि जब साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति, जल पावे तब उसी के साथ २ ची दूध के सेवन का भी क्रम से अभ्यास करे परन्तु कम से कम आरंभ से एक पल या नी चन्द्रना की जय तुक दूसरी प्रकृति न आवे तब तक उसी प्रकार जैसे कि रई श्लोक में लिखा है साधन करे, बाद जब १ पल भीत जावे तब फिर क्रम से ची दूध सेवन करे, और वहीं तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो । इस पूर्व निषेध और बिधि संगत हो गये । इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जायें वहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत कर लेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा वदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है । यदि विवेचना से बूझा तो सब योग नहीं हो जाता है, इसके विवेचना को सूत्र साधना चाहिये ॥

विचार करो कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखा जाये है कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये, परन्तु यह भी लिखा है कि अमुक २ वस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करें, तो यहां पर यह विवेचना करनी जरूर है कि मन को निवृत्तिही प्रधान है क्योंकि जहां कहीं दीय संयोग से आवश्यककीय वस्तु न मिली वहां सब किया कराया गष्ट भया कि नहीं ? इन्हीं स्थलों में प्रत्याहार काम में आते हैं कि आवश्यककीय

वस्तु न मिलने पर भी जो कार्य विधेय हैं वे कर लिये जायें, उनके स्थान में योगी लोग अपनी शक्ति से दूसरे उपस्थित पदार्थों को मुक्त कर लें और वही गुण उत्पन्न कर लें । कैसे ? भावना से, भावना दृढ़ होने से जैसे भृङ्गी दूसरे कीड़े को अपना स्वरूप बनाय लेती है वैसेही योगी लोग भी एक वस्तु के स्थान में दूसरी वस्तु का गुण उत्पन्न कर लेते हैं । यदि यह न हुआ तो योग की क्रिया ध्यान धारणा सब झूठी है । सो नहीं यह बहुत काल से भारतवर्ष में निश्चय है कि ध्यान से ध्येय वस्तु खिंच जाती है, जैसे कि कोटो में दूरस्थ वस्तु को अवयव खिंच जाते हैं, आजकल के योगीस धाँसी विज्ञानी लोग भी इस योग विद्या की तारीफ इसी शक्ति के प्रभाव से करते हैं, इससे सब से उत्तम शक्ति का बढ़ाना ही विधि निषेध का कार्य है ।

अथ नाडीशुद्धि ।

कुशासनेमृगाजिने व्याघ्राजिनेचकम्बले ।

रघूलासनेसमासीनः प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥

नाडीशुद्धिसमासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ॥३२॥

जब प्राणायाम साधन करने लगे तब पहिले नाडी शुद्धि कर ले तो ठीक होगा नहीं कभी ठीक नहीं होगा, सो उसका विधान यह है कि प्रथम कुशा के आसन में, या सुगन्धाला पर, या वायुम्वर पर सपना कम्यत पर बैठे, यह कोई आसन हो मोटा हो यानी गुलगुल हो पूर्व मुख होके बैठे या उत्तर मुख होके ।

नाडीशुद्धिकथंकुर्यान्नाडीशुद्धिस्तुकीदृशी । ?

तत्सर्वश्रोतुमिच्छामि तद्वदस्वदयानिधे ! ॥३३॥

चण्डिकापाणि कहते भये कि हे दयानिधि । नाडी शुद्धि किस प्रकार

करनी चाहिये और नाडी शुद्धि किस तरह की है यह सब हमसे कहे।
हमारी इच्छा इसके सुनने की बहुत ही हुई है ॥

मालाकुला सुनाड़ीपु मारुतो नैवगच्छति ।
प्राणायामः कथं सिध्येत्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत् ॥
तस्मादादौ नाड़ीशुद्धिं प्राणायाम ततोभ्यसेत् ॥३४॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि माला की भांति गुर्मी हुई नाड़ियों के
भीतर वायु अच्छी तरह पैठ के गमनागमन नहीं कर सकता, इससे प्रा-
णायाम कैसे सिद्ध हो सकता है ? और तत्त्वज्ञान भी कैसे प्राप्त होसकता
है ? इसी कारण पहिले नाड़ी शुद्धि करके सब प्राणायाम का अभ्यास
करना चाहिये ॥

नाडी शुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुनिर्मनुस्तथा ।
धौतेन समनु कुर्यान्निर्मनु धौत कर्मणा ॥३५॥

नाडी शुद्धि दो प्रकार से होती है, १ समनु, २ निर्मनु, इनमें बीज
मन्त्र के द्वारा जो नाडी शुद्ध की जावे उसको समनु तथा धौति कर्म के
द्वारा जो नाडी शुद्ध की जावे उसको निर्मनु नाडी शुद्धि कहते हैं ॥

धौतकर्म पुराप्रोक्तं षट् कर्म साधने यथा ।
शृणुष्वसमनुचण्ड ! नाडीशुद्धिर्यथा भवेत् ॥३६॥

हे चण्डकपालि ! षट्कर्म साधन के समय में पहिले ही धौतिकर्म
कह जाये हैं, अब जिस प्रकार "समनु" नाडी शुद्धि है उसको कहते हैं
तुन सुने ॥

उपविश्यासने योगो पद्मासनं समाचरेत् ।

गुर्थादि न्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम् ॥

नाडीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये ॥३७॥

प्रथम योगी पद्मासन बाध कर नामन पर बैठे, फिर गुरु आदि न्यास करे उसी के अनन्तर जैसे गुरु ने सिखाया है उसी के अनुसार प्राणायाम साधन के लिये नाडी शुद्धि करे ॥

वायुवाजं ततो ध्यात्वा, धूम्रवर्णं सतेजसम् ।

चन्द्रेण पूरयेद्वायुं बीजं षोडशकैः सुधीः ॥३८॥

चतुःषष्ट्या मात्रयां च, कुम्भके नैवधारयेत् ।

द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्याच रेचयेत् ॥३९॥

आसन, गुरु-न्यास के उपरान्त वायु बीज (य, यह वायु बीज है) का ध्यान पून वर्ण और तेज के सहित करे, फिर बुद्धिमान साधक उसी वायु बीज को षोडश (१६) मात्रा अर्थात् सोलह बार जप करते हुये नाक के नाए छेद से वायु को पूरण करे फिर चौदह मात्रा की सख्या से कुम्भक प्राणायाम (दाने नाक के छेद और मुह बन्द किये) धारण करे, इसी प्रकार दत्तीस मात्रा वायु बीज का जप करते हुये नाक के दहिने छेद को छेद कर रेचक (वायु को निकालना) प्राणायाम करे ॥

नाभिमूलाद्वन्निमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोवनीयुतम् ।

वन्निहबीजं षोडशेन सूर्यनाड्याच पूरयेत् ॥४०॥

चतुःषष्ट्याच मात्रया कुम्भकेनैव धारयेत् ।

द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं शशिनाड्याच रेचयेत् ॥४१॥

नाभि मूल अग्नि तत्व का स्थान है । योग के प्रभाव से उसी नाभि के मूल से अग्नि तत्व को प्रगट कर उठावे और पृथिवी तत्व को उसी अग्नि तत्व से संयुक्त करते हुये ध्यान करे । अनन्तर सोलह मात्रा अग्नि बीज (र यद् अग्नि बीज है) का जप करते २ नाक के दहिने छेद से वायु पूरण करे । इसी प्रकार चौसठमात्रा (र) जपते हुये कुम्भक प्राणायाम करे (सब द्वार खुले वायु धारण क्रिये रहे) फिर बत्तीस मात्रा (र) जपते २ नाक के बाएँ छेद से वायु को त्याग करे ॥

नासाग्रेशशधृग्विंशं ध्यात्वाज्योत्स्नासमन्वितम् ।
ठं, बीजपोद्गोनेव ईडयापूरयेन्मरुत् ॥४२॥
चतुपष्टयामात्रयाच 'व' बीजंनैवधारयेत् ।
अमृतंप्लावितंध्यात्वा नाडीधीतंविभावयेत् ॥
लकारेणद्वात्रिंशेन दृढभाष्यंविरेचयेत् ॥४३॥

उसके बाद नासिका के अग्र भाग में, क्षिरयो के सहित चन्द्र बिम्ब का ध्यान करते हुये (ठं) यह बीज सोलह मात्रा जप करते २ नाक के बाएँ छेद से वायु पूरण करे, फिर जल बीज (व) इसके चौसठ मात्रा जपते हुये झुपुत्रा नाड़ी में (भीवर हृदय की नाड़ी) कुम्भक योग से वायु धारण करे, बाद ऐसा ध्यान करे मानो नाक के अग्रभाग स्थित चन्द्रबिम्ब से अमृत की धारा गड़ रही है उसी के द्वारा शरीर की जितनी नाड़ी है सब घोरे जा रही है, इसीप्रकार ध्यान करते २ पृथिवी बीज (ल) इस को बत्तीस बार जप करते हुये नाक के दहिने छेद से वायु को रक्षण (त्याग) करे ॥

एवविधांनाडीशुद्धिं कृत्वानाडींविशोधयेत् ।
दृढीभूत्वासनंकृत्वा प्राणायामसमाचरेत् ॥४४॥

इसी प्रकार नंदी शक्ति कर्म के द्वारा जादियों को शत्रु काके दूढ़ भाव हो आसन में बैठ कर प्राणायाम का अभ्यास करे ॥

सहितःसूर्यभेदश्च उज्जायीशीतलीतथा ।

भस्त्रिकाभामरोमूर्छा केवलीचाष्टकुंभिकाः ॥४५॥

कुम्भक प्राणायाम आठ प्रकार का है, जैसे-१ सहि, २ सूर्यभेद, ३ उज्जायी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भामरी, ७ मूर्छा, एवं ८ केवली ॥

सहितोद्विविधाप्रोक्तः प्राणायामंसमाचरेत् ।

सगर्भोऽथ्यमुज्जाय्यं निर्गर्भोऽथ्यजवर्जितः ॥४६॥

सहित नामक कुम्भक प्राणायाम दो प्रकार है, १ सगर्भ, तथा २ निर्गर्भ, जिस कुम्भक में बीजमन्त्र उच्चारण करके साधना की जाये उसको सगर्भ कहते हैं और जिसमें बीजमन्त्र वर्जित रहे उसको निर्गर्भ करते हैं ।

प्राणायामंसगर्भं च प्रथमं कथयामि ते ।

सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखोऽप्युदङ्मुखः ॥

ध्यायेद्विधिरंजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥४७॥

घेरंड जी ने षण्डकापालि से कहा कि सगर्भ प्राणायाम किस प्रकार साधना करना चाहिये उसको पहिले तुमसे कहते हैं । यह यह है कि—सुखासन (भाराम के आसन) पर पूर्व मुख या उत्तर मुख हो के बैठे और प्रज्ञा को ऐसा ध्यान करे मानों, यह रक्त वर्ण है और अकार स्वर वर्ण के रूप है । तथा रंजो मुख विशिष्ट है ॥

इंदयापूरयेद्वायुं मात्रयापोदशैःसुधाः ।

पूरकान्तेकुम्भकाद्ये कर्त्तव्यस्तृहोयानकः ॥४८॥

ध्यान के अनन्तर बुद्धिमान साधक, (अ) यह बीज मन्त्र सोलह बार जपना हुआ नाक के बाएँ छेद से वायु पूरण करे । उसी समय कुम्भकके आगे और पूरक के अन्त में प्रथम बहुोपानयन जो पीछे कह आये है आचरण करना चाहिये ॥

सत्त्वमयं हरिंध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ।

चतुःपट्याच मात्रया कुम्भके नैव धारयेत् ॥४९॥

उसके अनन्तर सत्त्व गुण संयुक्त उकार स्वरूपी, कृष्णवर्ण चिन्तुना ध्यान करता हुआ (उं) इस बीज को चौसठ मात्रा जप द्वारा कुम्भक प्राणायाम में वायु धारण करे ॥

तमोमयं शिवंध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम् ।

द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥५०॥

फिर उसके अनन्तर तमोगुण युक्त मकार व्यञ्जनरूपी श्वेतवर्ण शिव का ध्यान करता हुआ (न) बीज से बत्तीस मात्रा जप के द्वारा उस पूरित वायु को नाक के दहिने छेद से रेचन करे ॥

पुनःपिंगलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत् ।

ईदृया रेचयेत्पश्चात्तद्वीजेन क्रमेणतु ॥ ५१ ॥

उसके अनन्तर फिर भी वही प्रकारसे उल्लिखित समस्त बीजोक्तो यथा सत्यम् (जैसी संख्या कह आयेहैं) जप के द्वारा दहिनी नासिका के छेद से वायु पूरण कर कुम्भक योग से उसी प्रकार धारण करने बाद फिर भी वाम नासा छिद्र से रेचन करे ॥

अनुलोम विलोमेन धारंवारं च साधयेत् ।

पूरकान्ते कुम्भकान्तं धृतनासा पुटद्वयम् ॥

कनिष्ठानामिकांगुष्ठैः तर्जनीमध्यमांगिना ॥५२॥

इसी प्रकार पुनः २ अनुलोम विलोम (बाएं से खींचे दहिनेसे छोड़े और दहिने से खींचे बाएं से छोड़े) के द्वारा प्राणायाम साधन करें । वायु पूरण के शेष से लेकर कुम्भक के शेष पर्यन्त तर्जनी और मध्यमा के जोड़ कर कनिष्ठा, अनामिका और अङ्गुष्ठ ये तीन अङ्गुलियोंके द्वारा नासापुट घरना चाहिये । अर्थात् जिस समय पूरक प्राणायाम से वायु खींचे उस समय दहिने नासा के छेद को अँगूठे से दाये रहे और बाएं छेद से खींचे । जब कुम्भक प्राणायाम से वायु को रोकते तब नाक के बाएं छेद को कनिष्ठा और तर्जनी घन हो अङ्गुलियों से दायी और इधर अँगूठे को भी दाये रहे और मुह भी बन्द रखे । और जब दहिने छेद से वायु खींचे तो पहिले बाएं छेद की कनिष्ठा और अनामिका से दाये रहे और कुम्भक में अँगूठा भी दहिने छेद में दबाये ॥

प्राणायामं निर्गर्भं विना धीजेन जायते ।

एकादि शतपर्यन्तं पूर कुम्भक रेचनम् ॥५३॥

निर्गर्भं प्राणायाम को दूसरी बिधि कह भाये हैं वह विना धीज मन्त्र ही किया जाता है, पूरक, कुम्भक, रेचक से तीन प्राणायाम अग वहित साधन करने में एक से लेकर सौ पर्यन्त साधा हैं ॥

उत्तमा विंशतिमात्रा पोद्दशीमात्रामध्यमा ।

अधमाद्वादशीमात्रा प्राणायानास्त्रिधास्मृताः ॥५४॥

मात्राके अनुसार प्राणायाम तीन प्रकारकी है, जिसमें बीस मात्रा की स्थिति है वह उत्तम, जिसमें सोलह मात्रा वह मध्यम, जिसमें बारह मात्रा स्थिति है वह अधम है ॥

अधमाज्जायते धर्म मेरुकं पञ्च मध्यमात् ।

उत्तमाश्च भूमित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥५५॥

अथम मात्रावाली प्राणायाम साधन करने से देह में पसीना आता है, मध्यम मात्रा की प्राणायाम से मेरु (पीठ से कमर तक) कांपने लगता है, अर्थात् एक नाड़ी गुदा से लेकर सलाह पर्यन्त दण्डाकार है वही वायु भरने पर कांपने लगती है, उत्तम मात्रा की प्राणायाम से देह भूमि से उठ के मूल्य में चली जाती है, तीन प्रकार प्राणायाम की सिद्धि के येही तीन चिन्ह है कि पसीना आवे, देह कांपे, और देह आकाश में उठ जावे, इन चिन्हों के बिना प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त नहीं हुई पही जानना चाहिये ॥

विवेचना—प्राणायाम में जो बीस, सोलह, बारह, ये तीन संख्या बांधी गई हैं उनका तात्पर्य यह है कि जितने रा बीज में सोलह पूरक चौबठ कुम्भक, बत्तीस रेचक हैं, वही प्रकार बीस मात्रा वाली में बीस पूरक, अस्ती रेचक, चात्तीस के हिसाब से वसता जानना चाहिये, वही प्रकार सोलह पूरक चौबठ कुम्भ, बत्तीस रेचक के हिसाब से मधवता, तथा बारह पूरक अष्टतालीस कुम्भक और बीसीस रेचक से अथवा जाननी चाहिये ॥

प्राणायामात्स्वेचरत्वं प्राणायामाद्दीगनाशनम् ।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोऽन्मनाः ॥
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ॥५६॥ ,

प्राणायाम साधन करने से स्वेचात्त्व शक्ति (आकाश में उठने की ताकत) होती है, प्राणायाम से रोग नष्ट होते हैं, प्राणायाम से परम शक्ति जाग उठती है, तथा प्राणायाम से दिव्य ज्ञान लाभ होता है अर्थात् एक नयीन बुद्धि उत्पन्न होती है, फिर प्राणायाम से चित्त में आपसी भाव आनन्द प्राप्त होता है, और प्राणायाम साधन करनेवाला पुरुष मय प्रकार सुखी हो जाता है ॥

तात्पर्य—नाड़ियों में जो वायु भरा रहता है वह बिना परिचालन क्रिया के गुम्न साधे एक रस बना रहता है जब कोई और दूसरे प्रकार का वायु उसके भीतर जा बैठता और उस वायु में मिल गया तो क्रम पट नान्द विकार उत्पन्न करके रोग राशि प्रगट करता है, विशेष कर वायु के विकार अधिक उत्पन्न होते हैं । परन्तु प्राणायाम से गया वायु नाड़ियों में बैठता है, पुराना गुम्न सधा हुआ वायु निकलता रहता है इससे विकारी भी वायु अर्थात् विकारी यस्तु से उपजा भी वायु शरीर में जाकर नाड़ियों में बैठ रहा में निज कर भी अपना असर नहीं पहुँचा सकता क्योंकि नाड़ियाँ व्यायाम (कसरत) से भँजी रहती हैं, पुष्ट हो जाती हैं, उनके भीतर विकार नियंत्रण करायार गुण करता है । इसी निमित्त योगी लोग दीर्घायु और सुखी रहते हैं ॥

अथ सूर्यभेद कुम्भक ।

कथितं सहितं कुम्भं सूर्यभेदनकंष्टयु ।

पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्तिबहिर्मन्त्र ॥५७॥

धारयेद्बहुयत्नेन कुम्भकेन जलंधरैः ।

यावत्स्वेदोत्सृज्येताभ्यां तावत्कुर्वतुकुम्भं क्रमम् ॥५८॥

। चिन्मय संहिता में चतुर्विधपाणि से कहा कि, सहित नामक भेद में जो पहिला कुम्भक कहा था उसका विवरण तो कहा जाये जब पूर्व भेद नामक जो दूसरा कुम्भक है उसका विवरण सुने । पहिले पातल पर बंध नामक गुद्रा धारण करके नाक के दहिने छेद से जितनी शक्ति हो वायु बाँध कर धारण करें । फिर वही यत्न के सहित उसका कुम्भक योग में लेते रहें, जब तक मख और यातों से पसीना न भाये तब तक स्थिर रहें ॥

प्राणोपानः समानश्चोदानव्यायौ तथैवच ।

नागः कूर्मश्चकृकरो देवदत्तो घनज्ज्वयः ॥५९॥

प्राण अपान, समान, व्यान, उदान, ये पांच प्रकार के वायु, शरीर के भीतर रहते हैं । तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, घनज्ज्वय, ये पांच प्रकार के वायु शरीर के बाहर भाग में रहते हैं ॥

हृदिप्राणो बहेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले ।

समानो नाभिदेशेतु उदानः कण्ठ मध्यमः ॥६०॥

व्यानोव्याप्य शरीरेतु, प्रधानाः पञ्च वायवः ।

प्राणाद्याःपञ्चविख्याता नांगाद्याःपञ्चवायवः॥६१॥

प्राण नामक वायु हृदय में, अपान कुदा देश में, समान नाभि में उदान कण्ठ में, इसी प्रकार व्यान नामक वायु समस्त शरीर में व्याप्त हो कर घुमता रहता है । ये प्रधान पांच प्रकार के वायु हैं । तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, घनज्ज्वय, ये पांच बाहर वाले वायु अप्रधान हैं ॥

तेषामपिच पञ्चानां स्थानान्यपि वदाम्यहं ।

उद्गारेनाग आख्यातः कूर्मरतून्मीलनेस्मृतः ॥६२॥

कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे । .

नजहाति मृतेक्षापि सर्वव्यापी घनज्ज्वयः ॥६३॥

ये पांच प्रकार के वायु त्रिच त्रिच स्थान में प्रवाहित होते हैं यह हम कहते हैं मुने, नाग नामक जो वायु है यह उच्चार लेने में आता है, कूर्म नामक वायु खाते मूदने सोपने में अर्थात् पलक ग्रासनमें कृकर नामक वायु छोक में या बिचकी में देवदत्त नामक वायु प्रमुगान में

यहता है, और घनशुभ नामक वायु मरण होनेपर भी मृतक देह (ताम्र) में भी जो बना रहता है, जिसके द्वारा लाश का फूलना पचकना आदि बहुत से वायु के कार्य देख पड़ते हैं ॥

नागोगृह्णाति चैतन्यं, कूर्मश्चैव निमेषणम् ।

सुतट्ट कृकरश्चैव जृम्भणं चतुर्थेनतु ॥

मवेतुनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसन्नेत् ॥६४॥

पांच प्रकारके जो वायु हैं उनसे पांच प्रकारके शारीरक कार्य होने हैं जैसे:—नाग नामक वायु जो हिकार में रहता है वह चैतन्यता प्रपन्न करता है अर्थात् भोजन, क्रिया, सुषा जल आनाशय में पहुंच कर जब तक ठीक अपने परिपक्व के स्थान पर नहीं पहुंचता तब तक एक प्रकार का मग्न उत्पन्न किये रहता है जिससे कुछ मानसिक स्वाभाविक चित्त विकृति रहती है, परन्तु जब हकार जाती है तब वह आनाशयस्थ जल अपने परिपक्व स्थानपर पहुंच कर आराम देता है और फिर मानसिक कार्य उत्तमता से हो सकते हैं, इसी निमित्त हकार के वायु का गुण चैतन्यता सम्पादन कहा जाता है ॥

कूर्म नामक वायु जो पलक भांजने में रहता है वह पलक भांजनेमें जो आंखों को आराम मिलता है वह ऐसे कार्य के सम्पादन करता है, नेत्रों में एक प्रकार का रस रहता है जिससे नेत्र मद्ध तर रहते हैं और जब तरावट के गुण से किसी प्रकार का मल उस नेत्रकी पुतली पर नहीं पड़ सकता, यदि नेत्र में तरावट न रहे तो रुखाईके कारण उसपर आदर भी नहीं घूल आदि से पुतली मलीन हो जाये और कुछ भी न देन पड़े, परन्तु कूर्म नामक वायु के प्रभाव से पलक उपा करता है तो नेत्र मद्धी में रस धाया करता है इससे तरावट नहीं भा सकती और मल आदि भी पुतली के ऊपर ठहर नहीं पाता । योग शास्त्र में दमनी भी

पुष्टता मुद्रादि के द्वारा हो सकती है कि, पल्लव, नृणां प्रनेसे नेत्रों में मणिक
दिशता प्राप्त हो जैसे शंभवी मुद्रा आदि में कह जाये-है, परन्तु बिना
मुद्रा और कुछ नेत्र की रक्षा हो यह इसी कर्म वायु का गुण है ॥

कृत्वा नामक वायु लुधा और लुप्ता ग्रहण करता है, अर्थात् ऊँच
गाने से एक प्रकार का वायु बाहर से आकर बड़े वेग से निशानता है
उससे आभासयका स्थित पचा हुआ अन्न प्रल बहुसही शीघ्र नीचे अंतर्द्वियों
में पहुँच जाता है और आमाशय का भाग खाली हो जाता है और उसके
आमाशय पूर्ण होने के लिये नाड़ियाँ सञ्चल होती हैं वही लुधा लुप्ता
कही जाती है, अन्न की कमी से लुधा और जन की कमी से लुप्ता होती
है, ये कार्य इसी कृत्वा नामक वायु द्वारा सम्पादित होते हैं ॥

देवदा नामक वायु से अनुहारदे के कार्य हुआ करते हैं अर्थात् जब
शरीर में वायु की गति स्थिर हो जाती है तब एक प्रकार का आलस
प्राप्त होता है उस आलस से सारगन्ध वृत्ति भी स्थिर हो जाती है, तब
उस स्थिर वायु की गति को संचल करने के लिये धातुर से इन देव
दा नामक वायु को जुड़, जिसके आकर्षण किया जाता है और फिर
वेग के छोटा जाता है उसके तब जागते रहो सोयी नहीं तब तक
माराज गतिता रहता है, परन्तु दोषाभास से इसकी भी आवश्यकता
नहीं रहती यह भी ज्ञात यथ हो सकती है ॥

चतुर्थ वायु जो सदा शरीर में रहता है किसी समय अलग नहीं
हो सकता उससे शब्द का कार्य हुआ करता है, अर्थात् बड़े शब्द ने
शब्द उत्पन्न करते, शब्द उत्पन्न होने के कारण दो द्रव्यका वेग से परस्पर
और विभाग है, यह संयोग और विवेक जैसे अकारादि स्वर और
अकारादि व्यंजन से तथा करताही जादि में प्रगट है, पहिले हृदय से
वायु को उठा कर देग से फँट जाती है जब धनुज लगता है तब अकार
कार, इकार स्वर और उकार, एकार स्वरों के विस्तार प्रसृति और अनि

संकोच भाव से प्रगट होते हैं, इससे स्वरों को विवृत प्रयत्न के अर्थ कहे हैं, इसी प्रकार पहिले कठ नली के तर उपर भाग का संयोग करके पीछे वेग से वियोग करने पर कवर्ग वाले अर्थ प्रगट होते हैं, इसी से उसको स्पर्श कहते हैं, दोनो हथों को वेग से एक २ के साथ संयोग करने से ताली बजती है, इत्यादि कार्य जितने होता है ये सम धनद्रुप नामक वायु के हैं, मुख्य बात यह है कि वायु एक ही है परन्तु कार्य भेदसे अपने २ स्थान पर पृथक् २ नाम धारण किये हैं ॥

सर्वेते सूर्यभिन्ना नाभिमूलात्समुदरेत् ।

ईडया रेचयेत्पश्चादुधैर्यथाखण्डवेगतः ॥६५॥

पुनःसूर्येणचाकृष्य कुम्भयित्वा यथा विधि ।

रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥६६॥

पहिले ५३-५८ श्लोक में कहा आये हैं कि सूर्यकी नाडी (नाक के दहिने छेद) से बाहर की वायु को यथा शक्ति खींच कि जालंधर ग्रंथ के सहित कुम्भक में धारण करे सो इस कुम्भक के समय कथित १० प्रकार के प्राणादि समस्त वायु के भेदों को, सूर्य नाडी (नाक के दहिने छेद) से अलग २ करके खींचे कुंघों को, धारण करे जैसा कि पहिले कहा आये हैं कि जय तक गण भीर बालों में पसीना न आये चाहे रहे भीर उपर नाभी मूल से समान नामक वायु को बठाये, उसके अनन्तर धीरता के साथ छोड़े वेग से (पीच में रुकी नहीं) नाक के बाएँ छेद से रेचन करे । इसी प्रकार फिर भी उसी सूर्य नाडी (दहिने छेद) से आकर्षण करके कुम्भक करे और जैसे कहा आये है जैसाही रेचन करे । इसी प्रकार बार बार प्रगम में आये । इसी को सूर्य भेद कुम्भक कहते हैं ॥

सूर्यभेद कुम्भक का फल ।

कुम्भकःसूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः ।

बोधयेत्कुण्डलीशक्तिं देहानलविश्वर्दनः ॥

इतितेकथितंचण्ड सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥६७॥

यह सूर्यभेद नामक कुम्भक जरा (बुढ़ाई) मरण इन सब को नष्ट करता है । इसके साधन से कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है और देहकी अग्नि बढ़ जाती है अर्थात् सुधा लगती और भोजन किया पदार्थ पच जाता है ॥

तात्पर्य—शरीर सञ्चारी जितने प्रकार के वायु विनाश आये हैं और जितने कार्य दिवाय आये हैं वे यदि अपने २ कार्य के ठीक परिमाण से किया करें तो शरीर निरोग रहता है और यदि अधिक प्रमाण से या अल्प प्रमाण से करें तो रोग वृद्धि के कारण हैं तथा मानसिक शक्ति को पदार्थ के रुद्धी व्यापारों की ओर कुंवाये रहते हैं । जिसे हृदय का बहुत गर्ह २ धक्काना, प्राणको अधिकता है, ऐसी वायुका अधिक छूटना अथवा के कार्य की अधिकता है, घेठ का अधिक फूलना समान वायु के कार्य की अधिकता है, स्वास का अधिक चलना (दना) आदि उदान के कार्य की अधिकता है, इसीप्रकार शरीरकी पीड़ा व्याप्त के कार्य की अधिकता है, गर्ह २ पलकों का बिरना कूर्म के कार्य की अधिकता है, दुग्धा वृष्टा का अधिक होना या हिरकी का बढ़ना कर्कर के कार्य की अधिकता है, जमुड़ाई का अधिक होना देवदंत के कार्य की अधिकता है, तथा गर्ह २ कर्कशता होना आदि पनंशुप के कार्य की अधिकता है वा इन सबों की ग्लानता, यानी हृदय कम धक्काना, अथवा वायु छूटने नहीं, घेठ में मुर्त उठी, नांव लेने में कष्ट का दुःख हो, अर्द्धों में गुली आ पावे इत्यादि भी रोगों के उत्पत्ति के कारण हैं, तथा सञ्चार कम जावे वा

न आवे, पलक न फिरे या कम फिरे हुआ तृष्णा न लगे या कम लगे, जमुहाइ न आवे, वा कम आवे शब्द उच्चारण न किया जाय वा स्वर मद हो जाय इत्यादि भी रोगों के प्रकार हैं, इनसे शरीर दुखी रहता है, मन विकल रहता, तथा प्राणसिक शक्ति की उत्तेजना जाती रहती है, बुद्धि विषम हो जाती है, स्मृति नष्ट हो जाती है इत्यादि नाना प्रकार की अशान्ति आजाती है । योगाभ्यास से जैसे कि सूर्यभेद कुम्भक कह आये इससे उन सब प्राणादि वायु के कार्य अपने आधीन (काबू) में रहते हैं वही घटावे वही बढ़ावे, वही बन्द करदे, वही ठीक २ होने दे इत्यादि । मुख्य बात यह है कि जब इन वायु के कार्यों से कोई कष्ट प्राप्त हो तब तत्त कुम्भक से शान्त कर सकता है, जैसे कि खांसी या छिचकी होने लगी तो यह कुम्भक करने से कष्टमत्त बन्द हो जाती है, इसकी परीक्षा भी की गई है, इसी निमित्त यह योगशास्त्र सब प्रकार के रोगों की एक मात्र दिव्य औषध है जो अपने शरीरही में सदा यत्नमान है वही दूढ़ने की जरूरत नहीं रहेगी । इससे योग विद्या में अनुषंगों का अब ध्यान लगा-ना चाहिये ॥

उज्जाययी कुम्भक ।

नासाभ्यांवायुमाकृष्य वायुवक्त्रेणधारयेत् ।

हृद्गलाभ्यांसमाकृष्य मुखमध्येचधारयेत् ॥६८॥

* बाहरी वायु को नाक के दोनो छेदों से खींच कर मुख में धारण करे । तथा शरीर के भीतर की वायु को भी हृदय और गले के योग और दबाव से खींच कर मुख में उगी वायु के साथ मिलाव दे जो कि पहिले बाहर से खींच कर भरी गई थी ॥

मुखं प्रक्षाल्य सवेदा कुर्याज्जालं श्वरंततः ।

आशक्तिकुम्भकं कृत्वा धारयेदग्निरोधतः ॥६९॥

जब बाहरी भीतरी दोनों वायु मुख में एकत्र करै तब ऊपर से मुह धोय डाले और सम्यक् बन्दनादि करके जालन्धर वन्ध नामक मुद्रा धारण करै । और जहां तक शक्ति रहै कुम्भक प्राणायाम के योग से वायु को मुख में धारण किये रहै परन्तु कोई विघ्न न पड़ने पाये वाह मुखही से रेचन करे । इसी को उज्जायी कुम्भक कहते हैं ॥

उज्जायी कुम्भक का फल ।

उज्जायीकुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।

न भवेत्क्रफ रोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥७०॥

ग्रामवातं क्षयंकासं त्वरं प्लीहा न विदधते ।

जरामृत्यु विनाशाय चोज्जायी साधयेन्नरः ॥७१॥

उज्जायी नामक कुम्भक को करके सब कार्य साधन करना चाहिये । इस कुम्भक के करने से कफ के रोग नहीं होते । क्रूर वायु (दस वायु का विकार) अजीर्ण, आमवात, क्षय, खाँसी, ज्वर, प्लीहा, ये सब रोग भी नहीं सताते । जो मनुष्य जरा मृत्यु को विनष्ट किया चाहे वह इस उज्जायी को अवश्य साधन करे ॥

शीतली कुम्भक ।

जिह्वा वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।

क्षयंचकुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

जिह्वा द्वारा वायु को आकर्षण करे अर्थात् जीभ को ओठों के बाहर निकाल के ओठों को दाँसे और क्षिप्त साँस रखे जिसे वायु भीतर की ओर खींचे जाये । अंतन्तर उस वायु को धीरे २ वर के

भीतर पूरण करे और जस शक्ति भर वायु खींच ले तब कुछ थोड़े ही काल तक कुम्भक करे और फिर नाक के दोनों छेदों में रेचन कर दे । यहां पर यह विवेचना भी रखते कि पहिले ही से नाशिका के दोनों छेदों को मूढ़ ले तब जिह्वा से वायु खींचे ? या नाक के छेद खुले रहें तब खींचे ? तो ऐसी दशा पर यह नियम रखना चाहिये कि यह शीतली कुम्भक दोनों प्रकार से हो सकता है और दोनों प्रकार की साधना से गुण दायक हो सकता है परंतु बिना नाशिका दवाये पर उत्तम है ।

शीतली कुम्भक का फल ।

सर्वदा साधयेदोगी शीतली कुम्भकं शुभम् ।

अजीर्णं कफ पित्तचं नवतस्य प्रजायते ॥७३॥

योगी सर्वदा अर्थात् सब काल में जपान कहीं रहै इस शुभकारी शीतली कुम्भक को साधन करे । इसे अजीर्ण, कफ रोग, पित्त विकार, ये सभी नहीं उस साधक को सताय सके ।

भस्त्रिका कुम्भक ।

भस्त्रेव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत् ।

तथात्रायुंच नासाभ्यामुभाभ्यांचालयेच्छनैः ॥७४॥

जिस प्रकार लोहार की धीकनी बार २ उठ २ के वायु खींचती है उसी प्रकार नाक के दोनों छेदों से धीरे २ वायु को बार २ खींचे और नदर में पूरा करे ।

एवंविधंति बारञ्च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।

तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वाक्तञ्च यथाविधि ॥७५॥

त्रिचारं साधयेदनं भस्त्रिका कुंभकंसुधीः ।

नचरोगं नचक्रेशमारोग्यंच दिनेदिने ७६ ॥

इसी प्रकार जैसा कि पहिले कह आये हैं बीस बार वायु खींचकर फिर कुंभक करे जब कुंभक शक्ति पर पूरा हो जाय तब उसी प्रकार जैसा कि पहिले धौकनी की तरह सोचने को कह आये हैं, उसी नाकके छेदे में बीस बार के झोकाये रचन करे । इसी प्रकार इस भस्त्रिका कुंभक को पुष्टिनाश नर तीन बार साधन करे तो उसको न रोग हों - न कोई क्रोध हो और दिन २ आरोग्यता प्राप्त होगी ॥

भ्रामरी कुम्भक ।

अर्हुरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्दयजिते ।

कर्शापिधायहस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुंभकम् ॥७७॥

जब आधी रात भीत जावे तब योगी एकान्त स्थान में जाय, जहाँ कि त्रिनी जीव जन्तु का शब्द न सुन पड़ता हो, वहाँ बैठ कर दोनों हाथों से कान गूँद ले और पूरक तथा कुंभक प्राणायाम करे ॥

शृणुयादक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम् ।

प्रथमंभिक्षि नादञ्च, वंशीनादं ततःपरम् ॥७८॥

मेघभक्तार भ्रमरी, घंटा कांस्यं ततः परम् ।

तुरी मेरी मृदङ्गादि निनादानक दुन्दुभिः ॥७९॥

जब पूर्वोक्त बिधि से योगी कुंभक करेगा तब उसके ध्यान दे कर दहिने कान में सुनना चाहिये, उस समय शरीरान्तर्गत जो शुभ नाद हो यह सुनाई पड़ेगा, पहिले झींगुर कांसा शब्द सुन पड़ेगा फिर घंटी देर

मैं वंशी का सा शब्द सुन पड़ेगा, उसके उपरान्त मेघों की सी गर्जन सुनाई देगा, उसके उपरान्त आकाश का शब्द सुन पड़ेगा, फिर भ्रमरी का सा गुनगुनाता सुन पड़ेगा, उसके बाद घटा का सा नाद सा सुन पड़ेगा, उसके बाद मजीराका शब्द सुन पड़ेगा, फिर तुरुही का सा नाद, फिर मेरी (नरसिंहा) फिर घुदङ्ग, फिर गगाड़े का सा शब्द सुन पड़ेगा ॥

एवंनानाविधंनादं जायने नित्यमभ्यसात् ।

अनाहतस्यशब्दस्य तस्यशब्दस्य याध्वनिः ॥८०॥

ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ।

तन्मनोविलयं याति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥

एवंभ्रमरी संसिद्धः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥

उक्त नाना प्रकार के नाद तभी उत्पन्न होंगे जब कोई अनुरूप प्रति दिन अभ्यास करे, अन्यथा चाहे कि एकही दिनमें सुन पड़े सो नहीं ॥

उस अनाहत (जिसको किसी ने नहीं किया जापही होता है) उसकी अनुत ध्वनि उस ध्वनि के अन्तर्गत एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न होती है, उस ज्योति के अन्तर्गत मन है, उसमें लय हो जाता है, यही विष्णु का परम पद है, इसी प्रकार भ्रमरी कुम्भक सिद्ध हो जाने पर समाधि सिद्ध हो जाती है ।

तात्पर्य—जब साधक भ्रमरी कुम्भक के योग से भाँख मूढ़ कर हृदय के मध्य में जो हृदय दल कल है उसको देखेगा और उस अनाहत नाद की अनुत ध्वनि सुनेगा तब मन अवश्य एकाग्र होगा । उस समय भास के मूढ़ने पर भी भीतर एक प्रकार की दृष्टि उत्पन्न होती है जो दृष्टि मे एक प्रकार की ज्योति मानुस पड़ती है । यही ज्योति विष्णु का परम पद है । अर्थात् इसी अवस्था से और सत्ता की मुल्यायस्था से

कुछ भी कर्ज नहीं है । योगी लोग उस अवस्था को इसी गरीर में प्राप्त कर परमानन्द प्राप्त किया करते हैं । ध्वनि एक ऐसा पदार्थ है कि मन पर स्वभावही से जो संलग्न होता है । जैसा कुछ ध्वनि में मन तुल्य होता है वैसे किसी विषय में नहीं । इसी निमित्त कहा है कि:-

“जपादष्टगुणं ध्यानं ध्यानादष्टगुणंतपः ।

तपसाऽष्टगुणं गानंगानात्परतरं न हि” ॥

यानी जप करने से आठगुना मन ध्यान में लगता है और ध्यान से आठगुना तप में क्योंकि तप मन इन्द्रिय दोनों को एकाग्र कर देता है ध्यान अल्प कलता नहीं । तप से आठगुना ध्यान में क्योंकि अथवा अति कम तरल से मन को सींच लेती है । गान से परे कोई भी वस्तु नहीं है जो मन को एकाग्र कर सके इत्यादि । मुख्य बात यह है कि योग विद्या का सार समाधि यह समाधि इन आसनों नामक कुण्ड से बहुत अल्प विद्वद् हो सकती है ॥

मूर्च्छा कुम्भक ।

सुखेनकुम्भकं दृत्वा मनश्चभुवोरतरम् ।

संतपज्यत्रिपयान् तर्वान् मनोमूर्च्छासुखप्रदम् ॥

आत्मनिमनसो योगा दानंदी जायते भुवं ॥८२॥

प्रथम हाथ के सहित पूर्व कथित विधान से कुम्भक प्रणायाम करे और मन को दृष्टि के द्वारा भीहों के बीच में लगाए दे । और कितने विषय, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि हैं, सब से मन को निवृत्त करे । भीहों के मध्य में जैसा पुर नामक द्विद्व स्वेत कलस है वही में

मन को संयुक्त करे । और मन मुख प्रद सूच्छित्त की भांति हो जावे । और मन के योग से परमात्मा में लय हो जाय इसे निश्चय भगवन्त प्राप्त होता है ॥

केवली कुम्भक ।

हंकारेणग्रहिर्याति सः कारेणग्रिशेत्पुनः ।

पट्शतानिदिवारात्तौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥

अजपानामगायत्रीं जीवोजपतिसर्वदा ॥८३॥

स्वास वायु जब भीतर से बाहर निकलता है तब (हं) यह अक्षर उच्चारित होता है । और जब स्याम भीतर की ओर खींचता है तब (सः) यह अक्षर उच्चारित होता है । ये दोनों अक्षरों का समूह एकदूस त्वांश है: जो २१६०० दिन रात में उच्चारित होता है अर्थात् दिन रात में इतने स्वास चलते हैं । इन दोनों अक्षरों का विचार तंत्रकारों ने यह किया है कि (हं) जिप । (सः) शक्ति है । तथा (हं+सः) और (मेहं) दोनों पद एकही वस्तु हैं । इसे इसका अजपा गायत्री कहते हैं (आप ही आप निकलने से अजपा है) से। जीव इसको सदाही जपता रहता है ॥

मूलाधारियथा हंसस्तथाहिहृदिपंकजे ।

• तथानासापुटद्वंद्वे त्रिविधंसङ्गमागमम् ॥८४॥

मूलाधार अर्थात् लिङ्ग और गुदा के मध्य भाग में हृदय पदा अर्थात् समाहित नामक कण्ठ में, तथा नास के दोनों छेद अर्थात् नैऋत और पिङ्गला नाड़ी में इन तीनों स्थानों से (हं+सः) रूप अजपा का जप हुआ करता है । अर्थात् इन तीनों स्थानों से स्वास वायु का गहरा जप करता है ॥

षण्णवत्यंगुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
 देहाद्वहिर्गतावायुः स्वभावोद्गादशांगुलिः ॥८५॥
 गायनेपोद्गादशांगुल्यो भोजनेविशतिस्तथा ।
 चतुर्विंशांगुलीः प्रस्यः निद्रायां त्रिशदंगुलिः ॥
 मैथुनेषट्त्रिशदुच्च व्यायामेचततोऽधिकम् ॥८६॥

और २ शास्त्रों के हिसाब से ननुष्य का देह ८४ अंगुल का प्रमाण, अर्थात् मादे तीन हाथ लम्बा है, परन्तु योग शास्त्र के हिमायने ननुष्य शरीर ८६ छानवे अङ्गुल का है । इस भेद का कारण यह है कि और शास्त्र कार लड़े ननुष्य की वसामर एक दण्ड लड़ाकर नापते हैं तो ठीक ८४ अङ्गुल उची की शरीर है अङ्गुल से होना, परन्तु योग शास्त्रवाले पैर के अंगूठे की घल ननुष्य को लड़ा कर के डोरे से नापते हैं और यह डोरा माक के ऊपर होकर प्रहरप्र में लगाते हैं जिसे १२ अंगुल और भी बढ़ जाता है । इस्से ८६ छानवे अंगुल का ननुष्य शरीर है । इसी लिये वि-रोध दिया है कि (कर्म रूपक) अर्थात् अंगूठे से तो प्रहरप्र तक कर्म रूपक शरीर है और केवल नाप वाला तो ८४ अंगुल है ॥

अब शरीर के वायु को भी योग शास्त्र उतना ही लम्बा मानते हैं मिलना लम्बा कि शरीर है । यानी ८६ अंगुल परिमाण शरीर के अभ्यन्तर वाता कर्म स्वरूप वायु है । वही वायु जब देह के बाहर स्वभा-विक प्रवास प्रवाह द्वारा होता है तब उसकी दीर्घ शरीर से बाहर बारह १२ अंगुल की होती है । यानी मूँह या माक या अपान से जब नापही भाप वायु निकलता है तब केवल १२ अंगुल तक जाता है । जब गान किया जाता है तब कुछ देग अधिक होता है इस्से यह वायु १६ मोलह अंगुल तक जाता है । भोजन में जब-जब भीतर पैदता है तब भीतर से वायु दबाव के कारण वीस अंगुल तक शरीर के बाहर जाता

है । इसी प्रकार पंथ (रास्ता) चलने में चौबीस २४ अंगुल बाहर जाता है क्योंकि परिश्रम से वायु का वेग बढ़ता है तो बाहर की गति भी बढ़ जाती है निद्रा में तोस अंगुल तक बाहर जाता है क्योंकि उस समय मानसिक व्यापार जो वायु के व्यापार को कुल घामे रहते हैं वे शिथिल रहते हैं और वायु का जाना जाना धीरे-धीरे रहता है । मेषुन में छत्तीस अंगुल शरीर से बाहर वायु जाता है, क्योंकि उसमें शरीर की समस्त नाड़ियों का वायु कवित हो कर झोंक से निकलता है । मुख्य करके बीस पतंग में इसका स्वरूप प्रत्यक्ष होता है । और व्यापार, यामी कसरत, या दीड़ना, वां कोहं काम वेग से या मेहनत से करने पर उसे भी अधिक वायु शरीर से बाहर निकल के जाता है और यही उसका स्वरूप कहा जाता है ॥

स्वभावेऽस्यगतेन्यूनं परमायुःप्रवर्तते ।

आयुःक्षयोऽधिकेप्रोक्ती मारुतेचान्तराद्भूते ॥८७॥

स्वाभाविक स्वास वायु का परिमाण केवल १२ बाहर अंगुल बाहर गति में कहा जाये है, जो यदि उसे कम गति किसी प्रकार शरीर से बाहर गमन में होय तो परमायु (उमर) बढ़ जाती है और यदि स्वाभाविक वायु की गति उसे (१२ अंगुल से) अधिक हो जाय तो आयु घट जाती है ।

• दियोगना.—स्वाभाविक वायु का घटना चिन्ता, व्याधि, शोक, मादि के अभाव में आनन्द युक्त शरीर में होता है और उसका बढ़ना उन्हीं चिन्ता, व्याधि शोक आदि से होता है, इसी वायु को ठीक रखने या कम परिमाण से बाहर निकलने के लिये योगशास्त्र की आवश्यकता है । उपर गान, भोजन, पन्य, निद्रा, मेषुन, आयाम इनमें जो वायु बढ़ के जाता है । उससे भी आयु के घट में हानि पहुचती है, पान्तु यदि गान को छोड़ के ये सब कम परिमाण से आचरण किये जायें और

कुम्भक अधिक बढ़ाए दिया जाये तो आयु के पक्षमें हानि न पहुंचेगी, या भोजन को छोड़ बिलकुल न किये जायें तो और भी उत्तम है । फिर पूरा कुम्भक यदि कर सकें अर्थात् शूल, संदृष्ट, या भयंकर धर्म तक स्वास, रोक सकें तो भोजन की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । रक्षा गान्त उसमें यद्यपि वायु शरीर से अधिक प्रभाण निकलती है तो भी उसका एक दूसरा गुण यह है कि नित्य के अभ्यास से कठ गली आदि की बाधिया कभी पड़नाती हैं इससे बाहर की जो बिकारी वायु मलिनता पैठ पर व्यापि उत्पन्न करती है वह नहीं ठहरने पाती, यही प्राणः उग्न २ के निकला करती है, और यदि विशुद्ध ध्यान ध्यान या उपदेश विषयक गान होता है तो चित्त का परमानन्द प्रदान करता है ॥

आयान के विषय में भी यही बात है कि अभ्यास से नाड़ी, पेशी, हड्डी सब पुष्ट होती है और बिकारी वायु का असर नहीं होता, परन्तु उच्च आयाम के प्रयोग भी इसी योग के रीति से होना चाहिये, नहीं तो पहिले तो नाड़ी नाड़ी पुष्ट होती है किन्तु जहां चोड़ा भी बिहार भीतर पहुंच के रुक में मिला लड़ा तुरन्त आयु लय करता है । इससे पूर्वोक्त आसनों की रीति से ही आयाम ठीक है अन्यथा शरीर का प्राणवायु नष्ट हो जाता है ॥

तस्मात्प्राणस्थितेदेहे मर्यानैव जायते ।

वायुनाघटसम्यन्ये भवेत्केवलकुम्भकम् ॥८८॥

तर्क यह निरुद्धात् है कि जब तक प्राणवायु देह में स्थित रहता है तब तक मरण नहीं होता । इसी क्रिये शरीर रक्षा के सम्यन्ध में उच्च प्राणवायु के द्वारा केवल कुम्भकही मुख्य है ॥

जावज्जीवो जपेन्ममन्त्र मजपासह्यकेवलं ।

अद्वयाधिष्ठितं सरूपा विभक्तैवलीकृते ॥८९॥

अतएवहिकर्तव्यः केवलीकुम्भकोनरैः ।

केवलीचाजपासख्या द्विगुणाचमनोन्मनी ॥१८॥

मनुष्य अथ तब जीता रहै तब तक जैसी संख्या ग्रहिन है वही प्रकार अजपा मन्त्र जपै देह के भीतर प्राणवायु के समागम सेही केवली कुम्भक नाशित होता है, इससे मनुष्यों को केवली कुम्भक अवश्य करना चाहिये । केवली कुम्भक में अजपा की संख्या यदि दूनी करके जपै तो यह अजपा मन को दिन २ उन्नत अर्थात् ऊँचे भाव को पहुँचाती है ॥

नासाभ्यांवायुंमाहृष्य केवलकुम्भकंचरेत् ।

एकादिकचतुःपष्टं धारयेत्प्रथमेदिने ॥१९॥

नाक के दोनों छेदों से वायु को भोज्य से केवल कुम्भक का साधन करे और उक्त कुम्भक के समय पहिले दिन पौरोक्त अजपा मन्त्र की संख्या एक से लेकर उन्नीस तक चौंसठ बार पूरी में होतबतक धारण किये रहै ॥

केवलीमष्टधाकुर्यां चामेयामेदिनेदिने ।

अथवापञ्चधाकुर्यां यथातत्कथयामिते ॥२०॥

उक्त प्रकार से केवली कुम्भक को प्रतिदिन आठ बार में आठ बार करना चाहिये, अथवा प्रतिदिन पाँच बार साधन करे । यह घेरण्ड जी शिष्य ने कहते हैं, जैसा कि तुम से इन कहते हैं ॥

प्रातमध्याह्नहसायान्हे मध्येरात्रिचतुर्थके ।

त्रिसंध्यमथवाकुर्यां त्ससमानेदिनेदिने ॥२१॥

प्रातःकाल, मध्यह्न, सायंकाल, मध्यरात्रि, तथा रात्रि के शेष भाग में । अथवा यह भी हो सके तो तीनों मध्याह्न में बराबर भाग से करे, पालु प्रतिदिन इन्में कभी न पूरे ॥

पञ्चवारंदिनेवृद्धिवारिकंचदिनेतथा ।

अजपापरिमाणं यावत्सिद्धिः प्रजायते ॥१४॥

अथ तत्र यद् केवली कुम्भक चिदु न हो स्या तत्र तत्र प्रति दिनं यस्या का परिमाण एकवार अथवा पांच बार कम से ज्यादा जाया जाहिye ॥

प्राणायामंकेवलींच तदावदतियोगवित् ।

कुम्भकेकेवलीसिद्धौ किंनसिद्धयतिभूतले ॥१५॥

अथ साधक केवली कुम्भक साधन कर लेता है तब वह योगवित् अर्थात् योग विद्या का ज्ञानने वाला कहल जाता है । केवली कुम्भक चिदु होने से भूतल में ऐसी कोई वस्तु नहीं बाकी रहती जो चिदु न हो जाय वरु केवली कुम्भक को अग्रिम साधन करना उचित है ॥

इति आ घिरण्डसंहितायां घिरण्ड षण्डकापानि सम्वादे

षट्स्थ योगप्रकरणे प्राणायाम प्रयोगो नाम

पञ्चमोपदेशः ॥ ५ ॥

षष्ठोपदेशः ।

अथ ध्यान योगः ।

स्थूलज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्यत्रिविधंयिदुः ।

स्थूलंमूर्तिमयंप्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयंतथा ॥

सूक्ष्मंविन्दुमयंग्रह कुण्डलीपरदेवता ॥१॥

चेरसह महाराज प्राणायाम की विधि कहकर ध्यानयोगका प्रकरण कहते हैं उसमें ध्यान तीन प्रकार वर्णन करते हैं, १ स्थूलध्यान, २ ज्योतिर्ध्यान, तथा ३ सूक्ष्म ध्यान, तिनमें स्थूल ध्यान मूर्तिमय होता है अर्थात् जिस देवता की मूर्ति में साधक की रुचि हो वा गुण की मूर्ति का चिन्तन । जिसकेद्वारा तेजोमय ब्रह्म अथवा प्रकृतिका ध्यान किया जाय उसको तेजोमय ध्यान कहते हैं । इसी प्रकार जिस ध्यान के द्वारा बिंदुमय ब्रह्म तथा कुण्डलिनी शक्ति का दर्शन प्राप्त होता है उसको सूक्ष्म ध्यान कहते हैं ॥

स्थूल ध्यान की विधि ।

स्वकीयहृदयेध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् ।

तन्मध्येरत्नद्वीपन्तु सुरत्नवालुकामयम् ॥२॥

साधक आसन बाध के दोना नैत्र मूढ़कर अपने हृदय के मध्य में ऐसी चिन्ता करे माने परमोत्तम अमृत भरा सागर वर्त्तमान है । और उसी समुद्र के मध्य में एक रत्नमय द्वीप विराजमान है । उसी रत्नमय द्वीप में रत्न रूपी बालू की राशि चारो ओर फैली है और अपूर्व शोभा बढ़ाये रही है ॥

चतुर्दिक्षुनीपतरुर्वहुपुष्पसमन्वितः ।

• नीपोपवनसंकूले वेष्टितं परिखाड्य ॥३॥

उस रत्न द्वीप के चारो ओर नीप के वृक्ष बहुततर पुरों के सदित विराजमान हो रहे हैं । उस नीप के उपवन की शोभा माने दिले की पाव है ऐसी मानुष हो रही ॥

मालनीमल्लिकाजाती केशरैश्चंपकैस्तथा ।

पारिजातैःस्थलैःपद्मैर्गन्धामादितदिङ्मुखैः ॥४॥

उस बीच वृक्ष के चारों ओर मानती, चबेनी, जूही, केसर, चम्पक, परिजात, स्थान पद्म खीर रहे हैं तथा उनकी सुगन्धि से दशदिशा गन्ध रही है ॥

तन्मध्येसंस्मरेद्योगी कल्पवृक्षमनोहरम् ।

चतुःशाखाचतुर्वेद नित्यपुष्पफलान्वितम् ॥५॥

इसके अनन्तर योगी उसी रत्न द्वीप के मध्य में एक मनोहर कल्प वृक्ष में चार शाखा (छाल) चारों वेदों का ध्यान, बलसे स्थापन करे, उन चारों वेदमई छालों में नित्य पुष्प (गन्धि नैमित्तिक काम्य कर्म) और सुगन्ध कर्म के फल की प्रशंसा रूपी फल गुंज ध्याय करे ॥

भ्रमराःकोकिलास्तत्र गुञ्जन्तिनिगदन्तिच ।

ध्यायेत्तत्रस्थिरोभूत्वा महामाणिक्यमण्डपम् ॥६॥

उसी वेद मई शाखा के पुष्पों में खर कोकिल (परस्पर परायण वाधुनजन) गुंज रहे हैं (पद बढ़ाव रहे हैं) और निगदन्ति (परस्पर उप-देण) कर रहे हैं । फिर उसी वृक्ष के नीचे स्थिर धायने ध्यान करे माने एक बड़ा भारी सिंगे का मण्डप बना है और शोभा बढ़ाव रहा है ॥

तन्मध्येतुस्मरेद्योगी पर्यंकमुमनोहरम् ।

तत्रेष्टदेवतांध्यायेद्यद्गान्गुमभापितम् ॥७॥

फिर उस मण्डप के मध्य में योगी रुढ़ स्थापन करे माने एक मनो-हर दिव्य रत्न मय पलंग बिछा है फिर उस पलंग के ऊपर द्रष्ट देवता का ध्यान करे शेष कि गुरु ने कहा है ॥

यस्यदेवस्यमद्वयं यथाभूषणग्राहनम् ।

तद्रूपध्यायतेनित्यं स्फूर्त्तध्यानमिदंविदुः ॥८॥

जिस देवता का जैसा रूप हो वैसाही भूषण और बाहन यह सब तद्रूप नित्यही ध्यान करे । इसी को स्थूल ध्यान कहते हैं ॥

तात्पर्यः—पहिले जो चारो वेद शाखा बर्धन किया है इससे यह साफ जाहिर होता है कि योगियों को वैदिक मार्ग का प्रचार अधिक करना उचित है क्योंकि ध्यान कोटि में उसी का रूपक आया है ॥

प्रकारान्तर स्थूल ध्यान ।

सहस्रारमहापद्मे कर्णिकायां विचिन्तयेत् ।

विलम्बसहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥९॥

अब दूसरी भांति का स्थूल ध्यान बर्धन करते हैं । ब्रह्म रंज में सहस्रार नामक एक सहस्र दल कमल है, वहाँ योगी इसी रूप में ध्यान करे कि उस महा पद्म की पंखुरियों के बीच जो कलिका है उसमें भी एक द्वादश दल कमल है ॥

शुक्लवर्णमहातेजो द्वादशैर्वीजभाषितम् ।

ह स क्ष म ल व र यू, ह स ख फूँ यथाक्रमम् ॥१०॥

यह द्वादश दल कमल स्वेत वर्ण है और तेज में प्रभक्त रहा है, और सभी कमल के द्वादश दलों में क्रम से जाने लिखे अक्षर दीख करके बैठारे हैं । यथाः—ह, स, क्ष, म, ल, व, र, यू, ह, स, ख, फूँ । येही बीजाक्षर हैं ॥

तन्मध्ये कर्णिकायां तु अ क थ। दि रे स्वा त्रयम् ।

ह ल क्ष कोणसंयुक्तं, प्रणवं तत्र वर्त्तते ॥११॥

उसी द्वादश दल कमल के मध्य में अ क थ। दि रे स्वा त्रयम् है उसके बीच म,

क व, ये तीन वर्ण, तीन रेखा और ह, ल, ए, ये तीन वर्ण तीन क्षेत्रों में मिले-बुधे हैं, तथा मध्य भाग में प्रणव अर्थात् ओंकार विद्यमान है ॥

नादविन्दुमयपीठं ध्यायेत्तत्रमनोहरम् ।

तत्रोपरिहंसयुग्मं पादुकातत्रवर्तते ॥१२॥

योगी इसप्रकार ध्यान करें सानों वडा नादविन्दु मय एक मनोहर पीठा बिछा है, उसके ऊपर एक हंस का जोड़ा बिराममान है और यही एक जोड़ी पादुका (खड़ाहूँ) भी चरे है ॥

ध्यायेत्तत्रगुरुन्देवं द्विभुजंचत्रिलोचनम् ।

देवताम्बरधरन्देवं शुक्लगन्धानुलेपनम् ॥१३॥

तहाही देा भुजा युक्त और तीन नेत्र युक्त गुरुदेव का ध्यान करे और उन गुरुदेव का वस्त्र श्वेत, दिव्य रुद्र, और सानों शुक्लवर्ण गन्ध परीर में लेपन क्रिये है ॥

सात्त्विक्य—यहा पर गुरु को द्विभुज कह के त्रिनेत्र, चतुर्लिये कहा है कि गुरु त्रिनेत्र सागी देना चाहिये, उसके सत्ताम्य नेत्रों की अपेक्षा विज्ञान नेत्र भी एक विशेष नेत्र रहता है जिनसे सद्मत् प्रत्यक्ष होता है आनन्द जो लोग मोटी बुद्धिवालों को गुरु करते है यह ठीक नहीं है ॥

शुक्लगुणमयमाल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम् ।

एवंत्रियगुरुध्यानात् स्थूलद्व्यानंप्रसाध्यति ॥१४॥

और यह भी ध्यान करे नानों गुरु की श्वेत पुष्पोंकी माला पत्रिने रक्त पद्म की शक्ति के सहित बिराममान है । इसप्रकार गुरु के ध्यान करने से स्थूल ध्यान साधित होता है ॥

सात्पर्य—रक्त शक्ति समन्वित इसलिये कहा है कि गुण में किसी प्रकार की दिक्षाई न हो, रक्त वर्ण का गुण तेजस्वी बोधक है ॥

अथ ज्योतिर्ध्यान ।

कथितं स्थूल ध्यानन्तु तेजो ध्यानं शृणुष्व मे ।

यद्वाचनेन योगसिद्धिं रात्मप्रत्यक्षमेव च ॥१५॥

चैरयड महाराज, मैं कहा, है अष्टकाध्यास । हमने तुम से स्थूल ध्यान कहा अर्थात् तेजो ध्यान कहते हैं उसे सुनो, जिस ध्यानसे योग सिद्ध होता है और आत्मा भी प्रत्यक्ष हो जाता है । अर्थात् कार्य कारण प्रगट हो जाता है ॥

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी ।

जीवात्मातिष्ठतितत्र प्रदीपकलिकारुतिः ॥१६॥

ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजो ध्यानं परात्परं ॥

मूलाधार अर्थात् गुण देह और लिङ्ग मूल के मध्य स्थान में, कुण्डलिनी शक्ति भुजङ्ग (सर्प) के आकार में विराजमान है, उसी स्थान में दीप प्रकाश की तरह जीवात्मा भी विराजमान है उसी स्थान में ज्योतिरूपी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये । यही होता है तेजो ध्यान या ज्योतिर्ध्यान कहते हैं, यह ध्यान योगी को परात्पर है ॥

प्रकारांतरं ज्योतिर्ध्यान ।

भुवोर्मध्ये मनाद्बुद्ध्या यत्तेजः प्रणवात्मकम् ।

ध्यायेद्ब्रालावलीयुक्तं तेजो ध्यानं तदेव हि ॥१७॥

यह प्रकार ज्योतिर्ध्यान ऊपर वह आये हैं अब दूसरे प्रकार का ज्योतिर्ध्यान यह है कि दोनों गौरी के बीचमें तथा मन के ऊपर (मान-विषय क्रिया के भी ऊंचे दर्जे पर) जो ठोकार मध, थिखा भाला समन्वित ज्योति वर्तमान रहती है उसी ज्योति को ब्रह्मज्ञान से ध्यान करे । इस को भी तेजोध्यान वा ज्योतिर्ध्यान कहते हैं ॥

सात्पर्य्य—जब योगी गौरी के बीच मन लगा कर ध्यान करते हैं और प्रणय का उच्चारण करते जाते हैं तब घट मन एकाग्र होके प्रणय को ही देखता है, फिर कुछ काल में प्रणय मन में रहता है सही पर तेजोमय होजाता है, तब उस पूरे मन को दृष्टि और प्रणय की पिता से मन की ऊंची गति के अन्तर में जो तेज प्रतिभात होता है वही ज्योति ध्यान है, इसके ध्यान से मनुष्य के शरीर में कोई भी विकार नहीं रह जाते निम्न ५ मन भी प्राप्त होता है ॥

अथ सूक्ष्म-ध्यानम् ।

तेजोध्यानंश्रुतं चण्ड सूक्ष्मध्यानं च दाम्बहम् ।

बहुभाग्यवशादस्य कुण्डली जाग्रता भवेत् ॥१८॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं हे चण्डकायानि । तुमने तेजोध्यान हुआ अब इन तुमने सूक्ष्म ध्यान कहते हैं वह भी सुनो । जिस मनुष्य की कुण्डलिनी जागती है वह बड़ाही भाग्यवान है ॥

आत्मनः सहयोगेन नेत्ररभ्राद्विनिर्गता ।

विहरेद्वाजमार्गं च चञ्चलत्वाद्बहुव्यते ॥१९॥

यह कुण्डलिनी शक्ति जब को किसी प्रकार भाग्य वश जागती है तब भी वह नेत्रों के छेदों से निकल कर आत्मा के साथ मिल के राज

भाग में बिहार करने लगती है और ऐसी चञ्चलता धारण करती है कि कभी किसी प्रकार भी नहीं देर पड़ती ॥

शाम्भवीमुद्रयायोगी ध्यानयोगेनसिध्यति ।

सूक्ष्मध्यानमिदगोप्य देवानामपिदुर्लभम् ॥२०॥

जय कुण्डलिनी पूर्णोक्त विधियो से कदाचित् ज्ञानी और चञ्चल हो रात्र भाग में बिहारे तथा योगी उठे पूर्णोक्त शाम्भवी मुद्रा के योग से ध्यान परे तो तुरन्त निद्रा हो के ध्यान में आजायेगी । यह सूक्ष्म ध्यान परम गोप्य है और देवताओं को भी दुर्लभ है ॥

सात्वर्ष्य—पीछे लिख नीचे है कि कुण्डलिनी शक्ति शरीर जड़ता का रूपक है और उसका जागना जड़ता विनाश है शरीर का आत्मा यस में होता है । प्रायः अनेक योगी राग शरीर को यस में लाकर भी योग विद्या के महान् २ कार्य नहीं करते परन्तु इन्द्रिय के द्वारा चित्र विचित्र पदार्थों के देखने में रागी २ फिरते और गुरुत्वों का भाल घामते हैं । इसीसे कहते हैं कि जन्ते चञ्चलता से योगी जन उसके रूप को धिर नहीं करभते, अर्थात् शरीर के यस होने का कार्य नहीं प्रगट कर सके, उन्हीं के अभ्यास के लिये, जिससे कि शरीर वशीभूत होने के उपरान्त याछे कार्य योगी योग किया करें शाम्भवी मुद्राके योग से सिद्धि दगांया है । अर्थात् फिर कोई शरीरक अपचार न करे तो नोराग हो कर यह दीर्घायु आदि कार्य दिगाय दे जो कि युग युगांतर तक योगियों के स्थिति योग शास्त्रों में लिखी है । परन्तु यह सब यही दृढ़ बुद्धि के कार्य हैं ॥

सूक्ष्मध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानंभवतते ।

तेजोध्यानात्सप्तगुणं, सूक्ष्मध्यानंरात्यरन् ॥२१॥

भूत ध्यान से सौगुना अधिक तेजो ध्यान कहा जाता है और तेजो ध्यान से लाख गुना अधिक सूक्ष्म ध्यान है तथा वह ध्यान परे से भी पर है ॥

इतितेकथिनचण्ड ध्यानयोगंसुदुर्लभम् ।

आत्मासाक्षादुभवेदस्मात्तस्माद्ध्यानविशिष्यते ॥२२॥

चैरण्ड महाराज ने कहा कि हे चण्डकापालि ! हमने तुमने इस सु-
दुर्लभ ध्यान योगका ब्योरा कहा, जिसे बि आत्मा साक्षात् कार होता है । और इसी कारण ध्यान योग सब प्रकार के योगों से विशेष है ॥

इति श्री चैरयुद्ध संहितायां चिरयुद्ध, चण्डकापालि सम्वादे,
घटस्थयोगे, सप्तमसाधने, ध्यानयोगो नाम
प्रष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोपदेशः ।

समाधि योग ।

समाधिविजुपरयोगं बहुभाग्येनलभ्यते ।

गुराःकृपाप्रसादेन प्राप्यतेगुरुभक्तितः ॥३॥

चैरण्ड महाराज ने चण्डकापालि से कहा कि सप्त योगों में परे स-
माधि योग है परन्तु यह बहुत ही बड़ी भाग्य से प्राप्त होता है । यह
समाधि योग गुरु की भक्ति करने पर जब गुरु प्रसन्न होते हैं तब उगरी
ही कृपा से प्राप्त होता है अन्यथा नहीं ॥

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः ।
दिनं दिने यस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैतिसदाः २

जिम मनुष्य की प्रतीति विद्या (योग विद्या) में है, अपने गुरु में प्रतीति है और अपने आत्मा में प्रतीति है तथा मन का प्रबोध (बुद्धि प्रसाद) है येही योगी दिन २ प्रति सुन्दर अभ्यास की गति से बहुत शक्ति प्राप्त होते हैं ॥

घटाद्भित्तं मनः कृत्वा ऐक्यं कृत्वा परात्मनि ।
समाधितं द्विजानीयान्मुक्तसङ्गोदशादिभिः ॥३॥

शरीर से मन को अलग करके सबसे परे जो परमात्मा है उसमें ए-
कता कर दे, इसी को समाधि आमना चाहिये, यह अवस्था सब प्रकार
की दशा आदि अवस्थाओं से मुक्त संशय है ॥

तात्पर्य—इसके पूर्व दूसरे श्लोकमें विद्या विषय प्रतीति कह जाये
है उनका मुख्य तात्पर्य यह है कि किसी विद्या की साधना यदि किया
जाये और उसमें प्रतीति न करे तो अभ्यास में चित्त कभी नहीं लगेगा ।
इस भिये प्रथम यह आवश्यक है कि विद्या विषय प्रतीति लावे, बि-
नामूल विद्या के जो बहुत २ कार्य वर्णन किये गये हैं वे साधनसे अवश्य
हो सकेंगे । यदि पहिलेही यह संवेष्टा हो गई कि यह गपराट भाजी है
तो मनकी क्रिया ठीक हाथी नहीं चकेंगी । दूसरी बात गुरु में प्रतीति
अर्थात् विद्या विधाने वाले में विश्वास रहना चाहिये, यदि पहिलेही ने
पर वृद्धि उत्पन्न हो गई कि यह कुछ नहीं मिलाय सकीगा तो इसीलिये
पहिले ही कह जाये है कि विधाने वाले की परीक्षा कर ले तब
उपनि गुरु करे तात्पर्य यह कि परीक्षा लेने के बाद उनमें अप्रतीति
नही बानी चाहिये । तीसरी बात आत्म प्रतीति है अर्थात् अपने चित्त
में यह न समझे कि मनुष्य काम इनमें नहीं हो सकीगा । देगा चित्त

में जाने से कोई भी कार्य नहीं हो सके यही कारण है कि आज कल भारत बाकी मनुष्य किसी विद्या को नहीं उत्तम रीति से प्राप्त कर सके, सब में भ्रष्टाचार भरी है इसी कारण योग विद्या भी लुप्त हो गई है, साधक को ऐसा नहीं करना चाहिये । अंगरेज लोगो में यह दृढ़ता है कि कोई व्यक्ति कोई नई विद्या की प्रगति करना आरम्भ करता है और वह उसका ठीक साथ नहीं हासिल कर सक्ता तो उसके पुत्र पीछाति कई पुरुष तक टोड़ते नहीं कोई न कोई अवश्य प्राप्त करके लव टोड़ते हैं । इसी दृढ़ता से इस समय देश तार, घड़ी आदि के अमुक्त आधार हम लोगो को दिखाय रहे हैं इससे अपने चित्त की कमी नहीं बढ़ाना चाहिये । चीनी जात मन का प्रयोग है अर्थात् समस्तदारी भी अवश्य होनी चाहिये नहीं और की जगह तीर हो जायगा । ये बातें जिनमें हैं उन्हें का अभ्यास दिन दिन बढ़ता है और उन्हें को सिद्धि प्राप्त होती है ॥

जाने सनाधि का जो राखण कहा है कि शरीर से मन को निकारके परब्रह्म में मिलाय दे उसका तात्पर्य यह है कि जो प्रायः कुछ कुछ आदि शरीर के धर्म प्राप्त हो कर मन को भाङ्गदित और व्यथित करते हैं, उनके ज्ञान प्रयोग (ज्ञान की दृढ़ता) से यह समझ ले जाना केवल शरीर ही के लिये कुछ कुछ हैं मन को नहीं । जैसे कि अंगुली में पोड़ा हुआ तो मन की दृढ़ता से उस कोड़े की पीड़ा को चिक अंगुली ही में समझना मन से उससे लगाव न रखना, ऐसा अवसर देखने में भी आता है कि यदि बलवान मनुष्य को शरीर में कोई पीड़ा हुई है तो नारे चिल्लाहट के साथ दुखी और कुल कुटुम्ब टोला पड़ेको सब को व्याप्त पड़ता है लेकिन बहुत से दुर्बल मनुष्यो को देखा गया है कि वे अपने भी अधिक पीड़ित होने पर भी अपने दुखी कुल कुटुम्बियों को धीरे धीरे देकर उनकी पकड़ हट को गाल किया करते हैं । ऐसी अवस्था में विशेष मन के प्रयोग की आवश्यक है जिसे मन को शरीर से पृथक्

समस्त कर परमात्मा में लगावे । अर्थात् शरीर इन्द्रिय इनके कार्य होते रहें, उनमें शुभाशुभ का ध्यान मात्र रहे, पर मानें मन उससे दूर है यह भावना रखे । इस यही समाधि है । यह समाधि बहुत ही कठिन साधन है । इसे २ योगाकूट पुरुषों के तम मन में छू नहीं जाता और साधारण मनुष्यों में ईश्वर की कृपा से स्वभाव ही मिट्ट देता जाता है, सभी को जन्मान्तर का साधन कहते हैं । परन्तु जो कोई इसका साधन दृढ़ता से करेगा अवश्य फल प्राप्त कर सक्ता है इसे परे दूसरा मानन्द भीर सुख मनुष्य के लिये कोई भी नहीं है । इसे इसको अवश्य साधन करना चाहिये ॥

अहंब्रह्मनचान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहंनशोकभाक् ।

तच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥४॥

जो साधक सब साधनों का अभ्यास कर चुका हो और समाधि साधन किया चाहे वह अपने मन को इस ज्ञान की ओर सदा झुकावे कि, मैं ब्रह्म हूँ दूसरा कुछ नहीं । और निश्चय करके पकड़ हूँ किन्तु जो मगल व्याधि जनक शोक हुआ करते हैं उनका भागी मैं नहीं हूँ, केवल शरीर है । मैं तो केवल सत् (तीनों काल में एक समान) चित् (मत् म-मत् का जानने वाला चेतन्य) आनन्द रूप (सुख दुःख विगत मनन एव भीष्टा) मय व्यक्तों में नित्य ही छूटा हुआ अपने अनली भागों में मुक्त (विद्यामगनी) ॥ ऐसी ही भावना सदा चित्त में रखे ॥

अथ समाधि के कई भेद हैं उनका वर्णन करते हैं; यथा:—

शोभय्याचैवसेनार्या भ्रामर्यायोनिमुद्रया ।
ध्यानंनानंदस्तानंदं लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥५॥

पञ्चधामक्तियोगेन मनोमूर्च्छाचपट्टविधा ।

पट्टविधोयं राजयोगः प्रत्येकमवधारय ॥६॥

समाधि योग छः प्रकार से है जैसे—१ ध्यान योग समाधि । २ ताद योग समाधि, ३ रसानन्द योग समाधि, ४ लय सिद्धि योग समाधि, ५ भक्तियोग समाधि ६ राजयोग समाधि । ये छः प्रकार की समाधियों को छः प्रकार की मुद्राओं से साधन करना चाहिये । शोभनीमुद्रा से ध्यान योग समाधि, खेचरीमुद्रा से तादयोग समाधि, आसरी नास कुम्भक से योग से रसानन्दयोग समाधि, योगिमुद्रा से योग से लय सिद्धि योग समाधि, भक्ति जलस्य पूर्वक भक्ति योग समाधि, वही प्रकार मनी मुद्रा नामक कुम्भक से योग से राजयोग समाधि का साधन करना चाहिये ॥

ध्यानयोग समाधि ।

शोभनीमुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ।

विन्दुब्रह्मसकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्रनियोजयेत् ॥७॥

प्रथम शोभनीमुद्रा का अनुष्ठान करके तब आत्मा को प्रत्यक्ष करे मनस्तर विन्दु मय ब्रह्म का एक बार दर्शन करके यहाँ मन को नियुक्त करे ।

स्वमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च संकुरु ।

आत्मानं स्वमयं दृष्ट्वा न किञ्चिदपि वाधते ॥

सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेत्तरः ॥८॥

अनन्तर फिर स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश के मध्य में अपने जीवात्मा को स्थापन करे और वही प्रकार अपने जीवात्मा के मध्य में फिर स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश को भी स्थापन करे, पश्चात् अपने जीवात्मा

को आकाश में देख के वह पुरुष किसी वस्तु से किञ्चित् भी बहुत न हो
और सदानन्द भव है। के समाधि में स्थित हो जावे इसी को ध्यान योग
समाधि कहते हैं ॥

नादयोग समाधि ।

साधनात्खेचरीमुद्रा रसनोर्द्धगतासदा ।

तदासमाधिसिद्धः स्याद्वित्वासाधारणक्रियां ॥९॥

खेचरी मुद्रा साधन के द्वारा जीभ को ऊपर की ओर जानेवाली
कर रखें, अर्थात् तलुवे के गड्ढे में जो असत कूप विद्यमान है वहीमें
जीभ को समुक्त करना होगा। इस क्रिया के द्वारा समाधि सिद्ध हो
जाती है और जिसको साधारण क्रियायें हैं सब को छोड़ दे इसका नाद
योग समाधि कहते हैं ॥

रसानन्दयोग समाधि ।

अनिलमन्दवेगेन भ्रामरीकुम्भकंचरेत् ।

मन्दमन्दरेचयेद्वायुं भृङ्गनादंततोभवेत् ॥१०॥

• भ्रामरी नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके, धीरे धीरे चलने योग से
आस वायु को परित्याग करे, इस योग के साधन करने से देह के भीतर
भ्रमर की ध्वनि के समान नाद सुन पड़ता है ॥

अन्तःस्यंभ्रमरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत् ।

समाधिर्जायते तत्र आनन्दः सोहमित्यतः ॥११॥

जब योरे के भीतर भ्रमरी का नाद सुने तब वहाँ जाहा मन पड़ता

हो अपने मन को लगाय दे, तब उस समय समाधि प्राप्त होती है और उस समय को आनन्द से 'सोमहं' (यही ब्रह्म मैं हूँ) यह ज्ञान उत्पन्न होता है, इसीको नादयोग समाधि कहते हैं ॥

लयसिद्धि समाधि ।

योनिमुद्रांसमासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत् ।

सुशृङ्गाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥१२॥

आनन्दमयःसन्नूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणिसम्भवेत् ।

अहंब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेन जायते ॥१३॥

योभी पुरुष प्रथम योनिमुद्रा का अनुष्ठान करके अपनेको शक्तिमय मान लेवे, अर्थात् अपनेको स्त्री और परमेश्वरको पुरुषस्वरूप अनुभवकरे अनन्तर मनही मन में ऐसी भावना करे माने पुरुष स्वरूप परमात्मा को साथ स्त्री स्वरूप आप शृङ्गार रस सम्बन्धी विहार कर रहे हैं । उसके अनन्तर वह भी अनुभव करना होगा "माने सत्ता विहार को द्वारा जो परमानन्द रस उत्पन्न हुआ है उसी रस में मैं निभान हो के परब्रह्म के रहित अभिन्न भाव से प्रणय में सम्मिलित हुआ हूँ । इसी योग के द्वारा "यही ब्रह्म यी कटितीय हूँ" ऐसे विज्ञान का अन्तार होता है, इसी समाधि को लय सिद्धि समाधि कहते हैं ॥

तात्पर्यः—यहाँ पर पुरुष अपने को स्त्री अनुभव करे यह बात विचार कोटि में नहीं हो सकती पड़ती है । फिर उस समय की नवीन शिक्षा की कसौटी में और भी सहा निषिद्ध जैविकी । परन्तु चैरग स-
हाराज ने मनुष्यों की विषय वासना को अच्छी तरह जान समझके इस भाव का आविष्कार किया है । समाधि के प्रकार की, इसी निमित्त दिखाया है कि मनुष्यों की रसि बहुत प्रकार की होती है । १ कोटि

सदृष्ट स्वभाव सदा बीर रस में नष्ट रहते हैं । २ कोई शांत स्वभाव सदा भजन पूजन में रत रहते हैं । ३ कोई उदासीन स्वभाव सदा सतरङ्ग के भावों से दूर ही बने रहते हैं उन्हें कुछ भी नहीं सुझाता । कोई ऐसे भी पुरुष होते हैं कि उनको स्त्री संसर्ग, स्त्री चिन्ता स्त्री रस समझना, यही अच्छा लगता है । ५ कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि उनका साप थोड़ा भी उपकार करे तो वे उसकी बदली आकाश में तन अर्पण किये रहते हैं । ६ कोई ऐसे पुरुष होते हैं जो नदा न्याय में रत रहते हैं न्याय ही के लिये शरीर तक परित्याग कर देते हैं । इन छः प्रकार के पुरुष जय उक्त छः प्रकार की समाधि साधन में लगे तो उनके ह प्रकार के बर्ताव से छः प्रकार की क्रियाओं का अभ्यास होगा जो जिसमें जिस स्वभाव की अधिकता होगी अर्थात् स्वभाव की अनौद्यत से कभी २ जो हाथी हुआ करती है, जैसे मर्यादा से अधिक बीर रस वाले ने कदाचित् कुछ कुटुम्ब माता पिता के साथ बीरता चरितार्थ किया । शांत रस वाले ने भावश्यक कार्य छोड़ भजन पूजन में काण बिताय दिया । उदासीन वाले ने शरीरक व्योहारों से हाथ धोया । स्त्री प्रेमी ने अगम्य लक्ष्य न बताया । कृतज्ञ पुरुष ने किसी भूत के भस्त्र हो भियेन हो दिया । न्याय परायण ने न्याय मूल को न समझ उसी में तन अर्पण किया । इत्यादि कुष्मापार नहीं प्राप्त हो सकेंगे । विशेष बात गद्गल पर यह स्मरण रहे कि जय स्त्री परायण पुरुष ईश्वर के स-निधन स्त्री भाव का अभ्यास करेगा तो जबकी यह प्रकृति धीरे ५ बदल कर दूसरी ओर झुक जायेगी । यह इन्ही निमित्त यह योग इस भाँति लिखा है ॥

भक्तियोगं समाधि ।

स्वकीय हृदये ध्याये विष्टदेव स्वरूपरुम् ।

चिन्तयेद्भक्तियोगेन परमाह्लाद पूर्वकम् ॥१४॥

प्रानन्दाश्रुपुलकेन दशाभावःप्रजायते ।

समाधिःसम्भवेत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनी ॥१५॥

विशुद्ध भक्ति और परम आह्लाद के सहित अपने हृदय में अपने
इष्ट देव के स्वरूप का ध्यान करे और आनन्द के भावें व्यक्त, तथा रोमांच
हो और बेहोशी आगाने । इसे जो समाधि अर्थात् मन की एकाग्रता
होती है उसे मनोन्मनी अर्थात् मन का शुद्धावापन हो जाता है इसी
को भक्तियोग समाधि कहते हैं ॥

राजयोग समाधि ।

मनोमूर्च्छासमांसाद्य मनोऽत्मनियोजयेत् ।

परमात्मनःसमायोगात् समाधिंसमवाप्नुयात् ॥१६॥

प्रथम मनो मूर्च्छा नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके मन को पर-
मात्मा के सहित मिलाय दे इसी प्रकार परमात्मा के संग्राम से समाधि
प्राप्त होती है । इसी को राजयोग समाधि कहते हैं ॥

समाधि योग का महात्म ।

इतितेकथितंचयड समाधिमुक्तिलक्षणम् ।

राजयोगःसमाधिः स्यादेकात्मन्येवसाधनं ॥

उन्मनीसहजावस्था सर्वैकैकात्मयाचकाः ॥१७॥

चिरयड महाराज कहते हैं कि हे ब्रह्मकावनि । मैंने तुम से इस
समाधि योग का कहा जो मुक्ति का लक्षण है । अथ मुख्य बात यह
कहता हूँ कि चाहे राजयोग, समाधि हों, चाहे उन्मनी हो चाहे सहजावस्था

के कोई भी योग हों सब एकही आत्मा के वाचक हैं और सब का वाचन आत्मा की एकाग्रता है अर्थात् एक रस ध्यान का लगाना है ॥

जलेविष्णुःस्यलेविष्णुः विष्णुःपर्वतमस्तके ।

ज्वालमालाकलेविष्णुः सर्वविष्णुमयंजगत् ॥३८॥

ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ विष्णु परमात्मा न हों । जल में विष्णु हैं, चल में विष्णु हैं । पर्वत के मस्तक पर विष्णु हैं । अग्नि की राशि में भी विष्णु हैं, यह संपूर्ण जगत् विष्णु सब है । अर्थात् कोई पदार्थ विष्णु से भिन्न नहीं है ॥

भूचराःखेचराश्चामी यावन्तोजीवजन्तवः ।

वृक्षगुल्मलतावल्ली वृणाद्यावारिपर्वताः ॥

सर्वव्रह्मविजानीयात् सर्वपश्यतिचात्मनि ॥३९॥

भूचर अर्थात् पृथ्वीपर विचरन करनेवाले जीव खेचर अर्थात् आकाश में चलनेवाले जीव । और भी जो ये सब जीव जंतु देख सकते हैं । तथा बड़े २ वृक्ष, छोटे २ पीछे लता, बल्ली (एक हाल वाली लड़े वृक्ष) वृण आदि ममल पान, पानी, पहाड़ इन सबों को ब्रह्म जानना चाहिये और और सबों को अपने आत्मा में देखना चाहिये ॥

आत्माघटस्यचैतन्य मद्वैतंशाश्वतंपरं ।

घटाद्विभिन्नतोज्ञात्वा बीतरागोविद्यासनः ॥४०॥

इसी गरीर स्थित जो जीवांशमा है वह चैतन्य है और अद्वितीय है (एकही बहुत व्यापक) यह निरन्तर रहता है कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । तथा सब पदार्थों से पर है । इनको गरीर से अलग जानने दो से बीतराग (ध्यान से मुक्त) और घासना रहित भाव प्राप्त होता है ॥

एवंविधः समाधिः स्यात् सर्वसङ्कल्पप्रजितः ।
स्वदेहे पुत्र दारादि बांधवेषु धनादिषु ॥
सर्वेषु निर्ममोभूत्वा समाधिं समवाप्नुयात् ॥२१॥

जैसा कि कह आये हैं वही प्रकार समाधि साधन करना चाहिये, किन्तु इस समाधि के साधन में सब प्रकार के सङ्कल्पों का छोड़ देना चाहिये । जिस विषय का सङ्कल्प छोड़ना चाहिये, इसपर कहते हैं कि अपनी देह के विषय में, पुत्र दारा आदि के विषय में, वायु वायुधने और पन आदि के विषय में, तथा सब पदार्थों से भ्रमला छोड़कर समाधिको प्राप्त करें ॥

तत्त्वं त्रयामृतं गोप्यं शिवोक्तं विधितानिच ।
वाशांसंक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम् ॥२२॥

यह तत्व त्रयामृत है अर्थात् ईश्वर में सब है जीवन मरण ही पर ही के मोक्ष प्राप्ति का लक्षण है, इसको महर्षि जी ने बहुत प्रकार से कहा है, परन्तु हमने वन सरो में से संक्षेप लेकर कहा, जो कहा यही प्रधान मुक्ति का लक्षण है ॥

इतिते कथितं चण्ड ! समाधि दुर्लभः पर ।
यदुज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले ॥२३॥

घोरण्ड महाराज ने कहा है चण्डिकापति । हमने तुमसे दुर्लभ और सब योगों से पर समाधि को इतना कहा कि, इतना ही बहुत है, जिस के ज्ञानने से भूमि नष्ट होने के लिए जन्म नहीं होता अर्थात् जन्म मरण चक्रन से मुक्ति हो जाती है ॥

उपसंहार ॥

योग विद्या और वैद्यक शास्त्र से कुछ भी फर्क नहीं है, क्योंकि पाठकों को आदि से अन्त में इस घेरण्डसंहिता के संहिताके माधनो का विचार भलीभाँति विदित हो गया होगा कि शारीरिक आचार (सन-दुरुस्त) ही इसमें प्रधान साधन है । इसी प्रकार वैद्यकमें भी शारीरिक आचार की व्यवस्था सर्वत्र वर्तमान है, फिर अब भाव यह सके हैं कि योग और वैद्यक से कोई भी फर्क नहीं रहा । अन्त में मुक्ति भी दोनों शास्त्रों का धन सिद्धान्त है, जैसे वैद्यक का सिद्धान्त “धर्मायैकाममेवा-यानारोग्यंमूलमुत्तमम्” अन्त में मोक्ष पद दिया है, सभी प्रकार इस योग में भी हरजगद् आरोग्यता दर्शय के अन्त में समाधि साधन का फल लिखा है कि “न पुनर्जन्म भज्जायते” इस इसी निमित्त हमने अपने इस आरोग्यदर्पण के अन्त में इस अनूपन योगविद्याके साधन दिखाय के अपने पाठकों को परिश्रम दिया है कि वे आप इन साधनोंसे जापदा वठावें और सगर का भी उपकार परस्पर कथोपकथन से करें, इस हमारा भी परिश्रम सफल है ॥ इति ॥

घेरण्ड संहिता योगशास्त्र की भाषा टीका
समाप्त ।



घेरण्डसंहिता का सूचीपत्र ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भूसाधन	६	वातक्रम कपालभाति	२५
पटकर्म	८	व्यूत्क्रम कपालभाति	२५
धीति	८	शीतक्रम कपालभाति	२६
अन्तरधीतिः	९	आसनविधि	२७
वातसरः	९	सिद्धासन	२८
धारिमारः	१०	पद्मासन	२९
अग्निमारः	११	भद्रासन	३०
वह्निभूतधीति	११	मुक्तासन	३१
प्रक्षालनम्	१२	यज्ञासन	३१
वह्निभूतधीतिः प्रयोग	१२	स्वस्तिहासन,	३१
दन्तधीति	१३	सिंहासन	३२
दन्तमूलधीति	१३	गोमुखासन	३३
दन्तधीति का फल	१३	घोरासन	३३
जिह्वाशोधन	१४	धनुरासन	३३
जिह्वामूलधीति	१४	सूतासन	३३
कर्णधीति	१६	गुप्तासन	३३
कपालरंघ्रशोधन	१६	सत्स्यासन	३३
हृदयशोधन	१७	पश्चिमेष्टानासनासन	३३
हृदयधीति	१७	मत्स्येन्द्रासन	३४
बसनधीति	१८	गैरज्ञासन	३४
प्रिविधना	१८	वरकटासन	३४
बाधधीति	१८	सङ्कुटासन	३४
मूलशोधन	२०	मयूरासन	३४
वस्ति प्रकरणम्	२१	कुक्कुटासन	३५
जनवस्ति की विधि	२१	कुर्मासन	३५
वस्ति का फल	२१	उत्तानकुर्मासन	३५
स्थानवस्ति	२२	वत्तानमयूरासन	३५
नेत्रियोग	२३	यूलसन	३७
सीलिकी योग	२३	मंष्ट्रकासन	३७
श्रोत्रक योग	२४	गङ्गुदासन	३७
कपालभाति योग	२४	वृषासन	३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शुद्धभासन	३८	भुजगिनी मुद्रा	७५
मकरासन	३८	चतुर्थोपदेश ।	
वज्रासन	३९	प्रत्याहार कथन	७८
भुजगासन	३९	पञ्चमोपदेश ।	
योगासन	४०	प्राणायाम विधि	७९
मुद्राकथनम् ।		स्थान निर्णय	८०
महामुद्रा	४३	काल निर्णय	८३
नभोमुद्रा	४४	मिताहार	८५
उड्डीयानवन्ध	४४	नाडी शुद्धि	८२
शालधरवन्ध	४६	सूर्यभेद कुम्भक	९०
मलयवन्ध	४७	उज्ज्वी कुम्भक	९०
महावन्ध	४८	शीतली कुम्भक	९०
महाधेय	४९	भस्त्रिका कुम्भक	९०
खेचरीमुद्रा	५०	भ्रामरी कुम्भक	९०
भिपरीति करी मुद्रा	५१	मृच्छा कुम्भक	९१
योगिमुद्रा	५३	कवली कुम्भक	९१
योगिमुद्रा का फल	५३	षष्ठोपदेश ।	
यज्ञोनीमुद्रा	५८	अथ ध्यान योग	९१
यज्ञोनीमुद्रा का विशेष फल	५९	स्थूल ध्यान की विधि	९१
शक्तिचालिनी मुद्रा	६०	प्रकारांतर स्थूल ध्यान	९१
सहायी मुद्रा	६४	ज्योतिर्ध्यान	९२
नाहुकी मुद्रा	६४	प्रकारांतर ज्योतिर्ध्यान	९२
शामवी मुद्रा	६५	सूक्ष्म ध्यान	९३
पद्मधारण मुद्रा	६६	सप्तमोपदेश ।	
पार्थिवीधारण मुद्रा	६७	शमाधि योग	९२
प्रीतमपीधारण मुद्रा	६८	समाधि के कई भेद	९२
भारनेवी मुद्रा	६९	ध्यान योग समाधि	९२
बापपीधारण मुद्रा	७०	रसानन्द योग समाधि	९३
भाकामीधारण मुद्रा	७१	नाद योग समाधि	९३
चण्डनी मुद्रा	७२	अथ निद्रा योगाधि	९३
पार्जनी मुद्रा	७३	भक्ति योग समाधि	९३
काकी मुद्रा	७४	राज योग समाधि	९३
मातंगिनी मुद्रा	७४		